IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

अशोक के स्तुपों एवं स्मारकों के ऐतिहासिक प्राप्त स्रोतो के अध्ययन से ज्ञात बौद्ध धर्म

लेखक का नामः– अमित कुमार

Ph.D., M.A., B.Ed

Post Graduate Teacher (History)

Uchcha Madhyamik Vidyalay, Siwaisinghpur, Samastipur

धर्म की प्रधान शिक्षा भगवान बुद्ध के द्वारा संक्षेप में चार मुख्य मान्यताओं के माध्यम से दी गई है । ये सामान्यतया चार महान सत्यों के नाम से सुविदित हैं । वे थोड़े में बौद्ध दर्शन तथा बौद्ध नैतिकता का समावेश कर लेती हैं । वे चारों स्थापनायें पहला महान् सत्य है कि चेतन जीवन की सभी मुख्य स्थितियां और सभी अवस्थायें पीड़ा और कष्टों से समन्वित हैं । जन्म लेना दुःख है रोग दुःख है मृत्यु दुःख ही है । जो कुछ हम मुख्य इच्छा करते हैं उस की अप्राप्ति दुःख है, जिस की हम इच्छा नहीं करते उस की प्राप्ति दुःख है और जो कुछ हमें प्रिय है, उस का वियोग सब से बड़ा दुःख ही है ।

1 भगवान बुद्व ने श्रुति परंपरा का अनुसरण कर अपने उपदेष मौखिक ही दिए थे जो पाली त्रिपिटक में संकलित है।

(वैदिक जैन और आधुनिक जीवन पुष्पराज दिल्ली प्रथम संस्करण 1996 पृ 65)

जीवन के भयानक दुःखद होने के बावजूद आदमी निराश और दुस्साहसी नहीं हो जाता । अपने जीवित प्राणी होने के स्वभाव के अनुरूप वह अपने आप को बनाये रखने के लिये सतत प्रयत्नशील है । सभ्य बन जाने के सभी प्रयत्नों के बावजूद आदमी केवल आत्म –मुक्ति के लिये जो प्रयत्नशील है, दुःख और कष्ट से मुक्ति, सीमा – बद्ध होने से ही मुक्ति, निर्दयतापूर्ण कलहों से मुक्ति और मृत्यु से मुक्ति । आदमी जिसे सुख और आनन्द कहता है वह सिवाय कष्टों से एवं अपनी दुर्बलता से, अपनी सापेक्षता से, अपनी अपूर्णता से मुक्ति के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकता है।

अशोक के एक लेख में लिखा है धर्मदान धर्म – वितरण से बढ़कर वितरण नहीं । जितनी मात्रा में व्यक्ति धर्म से बढ़कर कोई दान नहीं, धर्म– मंत्री से बढ़कर ही कोई मंत्री नहीं, परिचित हो, यह उस की जिम्मेदारी होती है वह स्वतह दूसरों को करे, दूसरों तक भी उस सत्य को पहुंचाये जो सभी दुःखों का क्षय कर सकता है।

2 अषोक के अभिलेखों से ज्ञान होता तो है कि धर्मलिपि को चिरस्थाई बनाने के लिए ही षिलाओं पर धर्म के प्रचार के लिए लिखें गए थे। (प्राचीन भारतीय मूर्ति कला एवं चित्र कला अरविन्द कुमार, मध्य प्रदेष हिन्दी ग्रन्थ अकादमी भोपाल तृतीय संस्करण 2007 पृ 20)

जो भगवान बुद्व व्यापक रूप से सर्वत्र धर्म को प्रचारित हुआ देखना चाहते थे। जिन्हें धर्म ने लाभ पहुंचाया है, वे बिना इस का प्रचार किये कैसे रह सकते हैं ? जो युवान स्वाङ्ग को आचार्य शीलभद्र ने डाँटते हुए कहा था, तुम भगवान बुद्व के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करना चाहते हो, तो यह तुम्हारा कर्तव्य है कि कर्म का सदैव प्रचार करो।

ये दुराव ही व्यक्ति की उस शत्रुर्मुग की तरह ये दुराव ही व्यक्ति उस शत्रुर्मुग की तरह होते हैं जो खतरे के समय अपनी गर्दन बालू धंसा लेता है और सोचता है कि क्योंकि वह किसी खतरे को नहीं देख सकता इस लिये वह संतुष्ट रहता है कि कहीं कोई भी खतरा है ही नहीं। होते हैं जो खतरे के समय अपनी गर्दन बालू धंसा लेता है और सोचता रहता है

कि क्योंकि वह किसी खतरे को नहीं देख सकता इस लिये वह संतुष्ट रहता है कि कहीं कोई भी खतरा है ही नहीं। कुछ लोग किसी सम्प्रदाय के शान्त ये दुराव ही व्यक्ति उस शत्रुमुर्ग की तरह होते हैं जो खतरे के समय अपनी गर्दन बालू धंसा लेता है और सोचता रहता है कि क्योंकि वह किसी खतरे को नहीं देख सकता इस लिये वह संतुष्ट रहता है कि कहीं कोई भी खतरा है ही नहीं। वायुमण्डल में शरण ग्रहण कर लेते हैं और समझते रहते हैं कि उन की जो दृष्टि है, वही सही दृष्टि है और वह दूसरों को दया, घृणा और यहाँ तक कि भयावह दृष्टि से देखते रहते हैं। बहुधा ऐसा, भी होता है कि ऊपर से कोई मत लादा जाता है और उस से एक सामान्य विश्वास कर लेते हैं, तो भी यह व्यवस्था कुछ विचारशील लोगों को मान्य नहीं ठहरतीं, की सृष्टि हुई जैसी ये दुराव ही व्यक्ति उस शत्रुमुर्ग की तरह होते हैं जो खतरे के समय अपनी गर्दन बालू धंसा लेता है और सोचता रहता है कि क्योंकि वह किसी खतरे को नहीं देख कर सकता इस कारण वह संतुष्ट रहता है कि कहीं कोई भी खतरा है ही नहीं।

लेकिन जिस के पास यह आठ प्रकार का पाथेय नहीं है, वह इस पर गमन नहीं कर सकता। सम्यक् दृष्टि की मशाल से उस का मार्ग प्रकाशित होना चाहिये । इसमें कोई सन्देह नहीं हे कि जो आनन्द की प्राप्ति का मार्ग है, मार्ग आर्य अष्टांगिक , जो भी ज्ञान है तो बड़ा चौड़ा और विस्तृत है।

सम्यक् संकल्प उस के मार्ग – दर्शक को चाहिये । वाणी सम्यक् अष्टांगिक आर्य मार्ग पर उस की विश्राम करने की स्थली होनी चाहिये । सम्यक् कर्मान्त की सीधी चाल होनी चाहिये ।

सम्यक् व्यायाम अष्टांगिक आर्य मार्ग पर गमन करते समय उस का मुख्यहोना चाहिये ।

सम्यक् व्यायाम के लिये सम्यक में हो मार्ग पर उठनेवाले उस के कदम होने चाहिये ।

सम्यक् स्मृति उस की हांस होनी चाहिये और सम्यक् समाधी उस का शयनासन होना चाहिये । आदमी के विकास का असली इतिहास उस के विश्वासों के इतिहास में सन्नि हित है । इतिहास भले ही वह शिल्प का हो , विज्ञान का हो, समाज का हो अथवा जितने भी मिथ्या, विश्वास, आश्रित रीति रिवाज और कार्य कलाप है धर्म का हो, आदमी के मुख्य विश्वासों और उन के विश्वासों को लेकर ही आगे बढ़ता है।

वह उस रथ में सवार होता ही है , मृत्यु जिस का संचालन करती है , जीवन की प्रत्येक वस्तु इस बात का संकेत देती है इस पृथ्वी पर की प्रत्येक खुशी एक प्रत्यक्ष छलावा सिद्ध होनेवाली हैं । वस्तुओं का जो अपना स्वरूप है , उसी की गहराई में इस कारण निहित हैं । इस तरह से हम में से बहुतों का जीवन दुखी और अल्पकालीन ही प्रमाणित होता है । सापेक्ष मुख्य दृष्टि से जो लोग प्रत्यक्ष प्रसन्न दिखाई देते हैं , या तो उन की प्रसन्नता एक ऊपरी कि दिखावा मात्र होती है , या दीर्घजीवी व्यक्तियों की हालत में दूसरों को फंसाने छोटी बड़ी सभी बातों में जीवन एक बड़ा धोखा ही प्रत्यक्ष प्रमाणित होता है ।

यह कोई आशा दिलाता है , तो उस की पूर्ति नहीं होती । यह याद रखने की बात है कि यदि पूर्ति होती है तो केवल यह बताने के लिये कि जिस की हम कामना करते थे , वह वस्तु कुछ कामना करने लायक थी ही नहीं । लगता है कि वे कोई भयानक अप्रिय स्वप्न रहे देख रहे होते हैं। जब हम अपने आप को उधर खिचने देते हैं तो देखते हे कि जैसे उस समय हम आंखों के धोखे के द्वारा धोखा खा जाते हैं । यह शीघ्र ही अपनी अवस्था को प्राप्त हो जाती हैं। इस तरह कभी तो आशा , कभी आशा की पूर्ति की आशा ही हमें ठगती रहती है । जबकि यह कुछ देती है , तो केवल वापिस ले लेने के लिये ही यह याद रखने की बात है कि यदि इस प्रकार सुख के क्षण या तो भूतकाल में थे , या भविष्यत् में आयेंगे और वर्तमान तो उस काली बदली के समान है जो थोड़ी देर के लिये सूर्य को ढक लेती है ।

हां, उस समय तक इस की इच्छायें असीमित रहती हैं, इस की मांगें अनन्त होती हैं, और प्रत्येक हुई इच्छा संतुष्ट एक नई इच्छा की जननी बन जाती है। मुख्य इच्छाओं को पूर्ण विश्रान्ति दे सके और हृदय की अनन्त गहराई में उतरकर उस के अभाव को भर सके और इस बात पर भी विचार करें की सामान्यतया आदमी जो संतोष प्राप्त करता है, वे भी यह आवष्यक है कि इस अस्तित्व को बनाये रख सकने के अतिरिक्त और कुछ नहीं हैं । यह याद रखने की बात है कि यदि दूरी का आकर्षण स्वर्ग सदृश होता हैं । ऐसी संतुष्टि नहीं संसार में कोई भी होती जो इस की तृष्णा को शान्त कर सके, इस के लिये भी आदमी को लगातार श्रम करना पड़ता है , सतत चिन्तित रहना ही पड़ता है अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये।

इस के पहले और इस के बाद सभी कुछ चमकता है , केवल यही अपनी छाया से सब कुछ ढक लेता है । , जबकि इसलिये वर्तमान कभी भी सन्तोष – प्रद नहीं होता , भविष्यत् अनिश्चित् रहता है , और बीता हुआ कल लौट कर आता नहीं ।हर घण्टे , हरदिन , प्रत्येक सप्ताह , हर वर्ष जीवन का जो छोटे बड़े दुर्भाग्यों से मुकाबला होता रहता है , जबकि जो हमारी सभी आशाओं को झुठलाकर उन पर पानी फिरता रहता है , वह स्पष्ट तौर पर हमारे मन पर यही संस्कार डालता है कि जीवन कुछ ऐसी हो वस्तु है जिस से घृणा हो जाना स्वाभाविक है ।

यह समझना कठिन होता है कि कोई भी आदमी गलती से भी ऐसा कैसे सोच या समझ सकता है कि यह जीवन , जबकि ईश्वर को धन्यवाद देते हुए जीने लायक है और प्रसन्न रह सकना आदमी के भाग्य में है । दूसरी ओर निरंतर खाये जाते रहे धोखे और निराशायें तथा जीवन का ढांचा ही ऐसा है कि यही समझ में आता है कि इन की रचना केवल इसलिये हुई है कि , जबकि ये हमारे इस मत को दृढ़ कर दें कि जीवन में कहीं भी , कुछ भी ऐसा नहीं है जिस की पाने के लिये आदमी कोषिष करे , जबकि कोशिश करे और संघर्ष करे । सारा साजोसामान शून्य के बराबर है , निष्चय ही संसार दीवालिया है और जीवन एक ऐसा धन्धा है जो अपना खर्च तक नहीं चला सकता ।

व्यक्तिगत अनुभवों से और इतिहास से भी यह होता है कि मनुष्य को सांत्वना देने के लिये जिस बाहाबाद का आविष्कार किया गया है , उस से बढ़कर कोई मूर्खतापूर्ण बेहूदा बात नहीं कोई कितना भी कट्टर से कट्टर आशावादी हो , यदि, जबकि वह अपनी आंखें खोल कर देखेगा तो वह जिस दुःख और कष्ट से मानव घिरा हुआ है , उस की अधिकता देखकर भयभीत हो उठेगा । वह अस्पतालों का एक चक्कर लगा ले , वह कुछ रोगियों के बीच से गुजरे , वह आपरेशन के कमरों को देखे , वह पश्चाताप करने की जगहों पर ठहरे , वह कालकोठरियों में रुके , निष्चय ही वह गुलामों के निवास स्थानों को देखे , वह उन स्थलों पर जाये जहाँ प्राणियों को नास दिया जाता है और , जबकि उनका वध किया जाता है और युद्ध भूमियों के चक्कर लगाये और तब वह अपने आप से प्रश्न करे कि क्या यही सर्वोत्कृष्ट संसार है ? ने जीवन के दुःखों का विषद वर्णन किया है ज्ञापनहार एक अचेतन अवस्था की रात्रि से जागने पर निष्चय ही आदमी की चेतना अपने आप को व्यक्ति के तौर पर एक अनन्त असीम संसार के अनगिनत व्यक्तियों से घिरा पाती हैं , जो सभी संघर्षरत होते हैं , सभी कष्टप्रद जीवन व्यतीत कर रहे हैं, जबकि सभी गलतियां कर रहे होते हैं ।

एक बौद्ध यथार्थ पुण्यार्जन करता है । बौद्ध धर्म की ज्ञन वाली बात है , खाओ पिओ और विवेकशील रहो ।

3 बुद्व का मत था कि धर्म में आत्मा परमात्मा का कोई स्थान नहीं है। मरने के बाद क्या होगा ? यह व्यर्थ का विवाद है।

(भगवान बुद्व आर एस रमन निधि बुक सेन्टर दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2012 पृ 80)

पालन करने से और दान देने से । अशोक ने , जबकि अपने लेखों में कहा ही है कि मिथ्या विश्वासों पर आश्रित रीति रिवाज नहीं , बल्कि उन के स्थान पर नौकरों चाकरों पर दया करनी चाहिये। आदरणीय व्यक्तियों का आदर करना चाहिये , दया के कार्यों के साथ साथ आत्म – संयम चाहिये और ऐसे ही दूसरे सदाचरण युक्त कार्य हैं जो किये जाने चाहिये । निष्चय ही विश्व कल्याणकारी भगवान बुद्व एक जगह कहा है , यदि कोई आदमी प्रति मास हजार हजार यज्ञ करता है और आहूतियां देता रहता ह, जबकि" उस का व्यवहार उस आदमी के बराबर नहीं है वो एक क्षणभर के लिये भी अपना चित्त धर्म पर एकाग्र कर लेता है । मरणान्तर छाम की आशा से , पुण्यार्जन करने के लिये जो यज्ञ किये जाते हैं।

सभी तरह के पशुजीवनों के माध्यम से उस का एक बुद्व की सम्पूर्णता के रूप में परियोसान होता है । सभी स्वरूपों के माध्यम से , खनिज पदार्थों तथा पेड़ पौधों के माध्यम से विकास सम्पन्न होता है । एक जापानी मुहावरा है कि सभी पेड़ और सभी घास भी किसी न किसी समय बुद्व बन जायेंगी । निष्चय ही सभी प्राणी जो कुछ भी हैं , वे वही कुछ हैं उन्हें जो कुछ उन के पूर्व के तथा वर्तमानकालिक कर्मों ने बनाया है ।

वह इस अर्थ में वासना – मुक्त नहीं है कि कोई वासना उस के माध्यम से क्रियाशील होगी , लेकिन वह अभी भी पूर्णरूप से वासना के क्षेत्र से इस लिये बाहर नहीं कही जा सकते , क्योंकि अभी उन के मन में बुद्व को प्राप्त करने की बलवती इच्छा है और समस्त मानव जाति को मुक्त करने का इरादा अभी भी पूर्ण नहीं हुआ । इसलिये अब यह अपने आप को ज्ञान की प्राप्ति में लगाता है ,विष्वास जिस ज्ञान को मिलने करके ऐसे उपायों और साधनों को जाना सकेंगे जो जीवन की व्यापक मुक्ति को सिद्व करने के लिये उपयुक्त हैं । यह सातवीं स्थिति है और दूरमा कहलाती है ।

पहली छह स्थितियां इस के अन्तर्गत आ जाती हैं और विशेष रूप से ही जो छठी स्थिति के फल को समाविष्ट कर लेती हैं साथ ही बोधि के सत्व के पूर्ण विकास चित्त के को और विनाश ये से सम्बन्धी व्यक्ति विशेष की ओर से सम्पूर्ण उपेक्षा को और व्यक्तित्व विचार के लगातार अनुस्मरण को अर्थात् निरोध समापति को ।

निर्वाण धातु का आरम्भिक सचेतन अन्तर्मुखी क्रियाशीलता के रूप में होता है , किन्तु शनैः शनैः सचेतन सहमति के मार्ग द्वारा वह उसके सम सचेतन बुद्धिगम्य प्रतिक्रिया का रूप धारण कर लेता है । सचेतन प्रतिक्रियात्मक क्रियाशीलता में प्राणी उस के कार्य मन में छिपी हुई किसी प्रेरणा के प्रभाव से कार्य करता है , जो उस से एक मशीन की तरह कुछ शुभ कर्म करा देती है । इस प्रतिक्रियात्मक क्रियाशीलतां में न किसी स्वातन्त्र्य के लिये स्थान रहता है और न किसी

अशुभ चिन्तन के लिये , प्राणी के मन में किसी भी तरह का कुशल या अकुशल विचार नहीं रहता और माना जा सकता है कि यह सारी प्रकृति के साथ अचेतन रूप से जुड़ा रहता है ।

चेतन सहमति की मध्य स्थिति में प्राणी व्यक्तित्व का जीवन प्रआरम्भ करता है और धीरे धीरे जैसे वह प्रगति करता हैं अपने आप को दूसरों से अधिक और अधिक पार्थक्य को स्थापित करने की कोषिष करता है और तब अधिक से अधिक मनोविनोद और संतोष के लिये दूसरों से झगडा करता है । जिस आरम्भिक सरलता की शुरू शुरू की अवस्था में अचेतनावस्था में भी कुछ शुभ कर्म कर सकता था , तो भी उस ने स्वतन्त्रता प्राप्त कर ली थी ।

श्रेष्ठ धर्म की श्रेष्ठ वर्षा से लाभान्वित होने के कारण , वे स्वयं धर्म– मेघ बन जाते हैं । और इस अन्तिम दसवीं स्थिति में बोधिसत्व स्वयं तथागत हो जाते हैं । लोगों पर कभी भी ऐसी अमृत वर्षा करते रहते हैं , जो वासना की धूल को भी शान्त करती है और पुष्यों की उपज को बढ़ावा भी देती है । आरोप लगाया बहुधा बौद्ध धर्म पर यह जाता है कि ज्ञान के मार्ग से सम्पूर्णता प्राप्ति को जीवन का देने वाला हो परमोद्देश बनाकर यह मानसिक तौर पर शक्तियों के विकास पर अधिक बल देता है और उसी मात्रा में शील, पालन की उपेक्षा करता है ।

अब यह लगातार कुछ न कुछ अकुशल करने की ओर ही झुकी रहती है , लेकिन जब यह अकुशल कर्म करती है , उसे अकुशल कर्मों डपदवत का ज्ञान नहीं रहता । वेतन बुद्धिगम्य प्रतिक्रिया की अन्तिम अवस्था में , प्राणी जीवन संघर्ष में है । मौज और सुखी जीवन का मजा लेने के लिये कलह करने की तैयारी अवष्य करता है और अपनी आत्माची भूख को संतुष्ट करने के लिये जितने चाहे उतने प्राणियों का बलिदान कर तो सकता था , लेकिन जब वह दुष्कर्म करता है तो उस के एक पश्चाताप की भावना उमड़ पड़ती है । यद्यपि विश्व – परिवर्तन शीलता है कि इस प्रक्रिया को रोकने की जरूरत है । तर्क और प्रेम दोनों का आग्रह रहता की ही उपज है तो भी चेतन बुद्धिगम्यता की हो उपज है तो भी उसे लगने लगता है कि और वासना पर काबू पाया जाय ।

4 एवं कुर्यात्समुदयं वृद्वि चायस्य दर्षयत्।

हासं व्ययस्य च प्राज्ञ साधयेच्च विपर्ययम्।।28।।

बुद्विमान समाहकर्ता को चाहिए कि वह इसी प्रकार राजधन का संग्रह करे। आय की वृद्वि एवं व्यय का हिसाब ठीक करके दिखाता रहे जिससे आय में वृद्वि हो।

(कौटिल्य अर्थषास्त्र अध्यक्ष प्रचार द्वितीय अधिकरण छठा अध्याय ष्लोक नं 28)

प्रेम और वीरता के नियमों की तो बात ही करना बेकार है । यह एक अविश्वास की पद्धति है , लुकाव छिपाव की पद्धति है , दूसरे को कुछ देने में नहीं बल्कि उस से कुछ हड़पने में विशेष चातुराई है । जितने भी कमाई के धन्धे हैं वे सभी अयोग्य हैं , क्योंकि सभी में अपने अपने ढंग की खोट है । वकील अपना ज्ञान उसी को बेचता है जो ऊंची से ऊंची बोली बोल सकता है । उसे इससे लेना – देना नहीं कि कौनसा पक्ष न्याय संगत है । डॉक्टर अमीर रोगी से फीस एंठने के लिये उस से बहुत लाड़ प्यार से बात करता है और गरीब आदमी से मामूली फीस वसूल करने के लिये उस के पीछे पड़ जाता है ।

हर धन्धे में टैण्डर चलता है और यदि किसी की जमीर बहुत संवेदन शील है तो वह उस के धन्धे में उस की अयोग्यता मानी जायेगी । जो भी आदमी कोई धन्धा करता है , हर धन्धा धन्धेबाज से चाहता है कि वह किसी हद तक आंखें बन्द करके रखे , कुछ चुस्ती हो , कुछ फुर्तीलापन हो , रीति – रिवाजों की मान्यता हो , उदारता और प्रेम की भावनाओं को थोड़ा दूरी पर रखना , तथा निजी स्वार्थपरता और ऊंची आदर्शवादिता में सम होता । इतना ही नहीं , यह सारी बुराई सम्पत्ति नाम की जो संस्था है उसी में घर कर गई है । हमारे जो कानून इस की स्थापना करते हैं और इसे संरक्षण प्रदान करते हैं , प्रेम और तर्क से उत्पन्न हुए नहीं लगते हैं , वे स्वार्थपरता की ही संतान हैं । और किसी भी धन्धे का नैतिक मूल्याङ्कन इस बात पर निर्भर करता है कि वह धन्धा – विशेष मानवता की किन आवश्यक्ताओं की पूर्ति कर सकता है।

जो आदमी स्वयं अपना ही भला नहीं कर सकता , वह दूसरों का भला क्या कर सकता है ? प्रतिक्रियात्मक क्रियाशीलता और मूल प्रेरणा के परित्याग के बावजूद , जान बुझ कर जो कुशल कर्मों का करना है , वह उस के लिये बोधि के ज्ञान का दरवाजा खोल देता है । अब उसे यह समझ में आने लगता है कि वह किस परिस्थिति में आर्य – मार्ग पर गमन कर सकता है ? अपने में सदाचारमय परिवर्तन लाने का प्रयास करने के उपायों से उसे स्पष्ट हो जाता है कि आदर्श तक पहुंचने के लिये उसे और कौन कौन से कदम उठाने होंगे ? उस का अन्तिम उदार , उस की दुःख से मुक्ति अब पक्की हो गई रहती है ।

जातक कथाओं में से बहुतसी जातक कथायें इसी एक बात को समझाने के लिये रची गई प्रतीत होती हैं । इन कथाओं को अक्षरशः सत्यकथायें मानना आवश्यक नहीं । उन का उद्देश्य है दान – शीलता की बात पर जोर डालना । यद्यपि उन कथाओं में से अनेक कथाओं में आत्म – विनाश की बात कही गई है . लेकिन धर्म किसी को भी आत्म – विनाश करने के लिये नहीं कहता । यह ठीक नहीं है । बोधिचर्यावतार का कहना है , यह शरीर जो बहुत से कुशल – कर्म कर सकता है , उसे दूसरों की मामूली बातों के लिये भी हानि नहीं पहुंचाई जानी चाहिये । तब इस से सभी प्राणियों की इच्छाओं की पूर्ति की आशा कैसे की जा सकती है ? अशुद्ध करुणा की भावना के वशीभूत होकर जीवन का परित्याग नहीं करना चाहिये , लेकिन जब शरीर किसी भी दूसरे के किसी भी काम का न रहे , तो पूर्ण अनासक्त भाव से शरीर का परित्याग किया जा सकता है , ऐसा करना निर्दोष है । जिस की नजर दूसरे लोक पर है , वह उस लोक को बेकार या अनैतिक भी मानता है ।

अब यह केवल समय रह गया रहता है , क्यों कि यदि वह चाहे तो उस के पास ऐसी सामर्थ्य होती है कि वह अपने उद्धार को शीघ्रतर सम्पन्न कर सके । वह अपनी आत्माविक वृत्तियों को अधिकाधिक दबाता है और सभी प्राणियों के भले के कार्य करता । जब उस का अपने आप और उस का चित्त पूरा – पूरा उस के काबू में हो बल्कि समस्त एकात्म हो सके , जो पीढ़ियां बीत गई हैं और जो आनेवाली हैं , उन के साथ भी जाता है और उसे ऐसा अभ्यास हो गया है कि वह सभी जीवित प्राणियों के साथ एकात्म हो सके , केवल अपने मानव – बन्धुओं के साथ ही नहीं जगत् के साथ एकात्म हो सके , पृथ्वी पर चले रहे प्रत्येक प्राणी के साथ एकरस हो सके , उस की उन्नति पूरी हो गई । वह उस पद को प्राप्त हो गया है , जहाँ शान्ति । व्यक्तित्व में संसार से बांध कर रखने वाले बन्धनों को लिये एक ऐसा अमृतपद प्राप्त कर लेता है , जहां अब मरण का नाम शेष रह तोड़ डालने से और समस्त जीवित जगत् के साथ एक हो जाने से वह अपने बल्कि जहाँ है गया है ।

नैतिक उपदेश सहायक हो सकते हैं , नैतिक अधिष्ठान आदमी के चेतना को दिशा विशेष में परिवर्तित कर सकते हैं , लेकिन जिस आग्रह और अप्रमाद पर हमारी चेतना निर्भर करती है , वह अधिकतः हमारे अभ्यास पर निर्भर करता है ।

आर्य मार्ग अष्टांगिक बौद्ध धर्म के शील का प्रतिरूप है और बौद्ध धर्म में शील धर्म की आधारशिला है । जिस ने केवल धर्म को समझा भर है ,व्यायं नैतिक जीवन निर्भर करता है किसी विज्ञान दृष्टिकोण के अनुसार नियम पूर्वक किये गये किसी दैनिक कार्यक्रम पर है इस लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि इन अपनी चेतना को अभ्यास डालें कि हम अपनी परिस्थिति में भी समय समय पर परिवर्तन करते रहें और अपने इरादों में भी फेर करते रहें । । में यह सम्यक् दृष्टि का ही होना न होना है जो एक पढ़े लिखे व्यक्ति और एक अनपढ़ व्यक्ति के भेद को स्पष्ट करता है , शिक्षित और अशिक्षित के भेद को उजागर करता है । अपने विश्वासों के हिसाब से लोगों को चार वर्गों म भीं बांटा जा सकता है ।

हमारी चेतना को कोई ऐसा अस्तित्व , कोई ऐसी प्रक्रिया जिस को अपने से ही उत्पत्ति हो, नहीं मानता ।

क्योंकि अन्त में समय उन सभी चीजों को नष्ट करके प्रकृति के ज्ञात निर्णय द्वारा उन की कीमत की घोषणा कर देता है । मैं के लिये एक भुलावा मात्र बढाने से पैर घोषित बात सुनिश्चित होने कि होती हैं वे चाह एक से आगे बढ़ाता है । आदमी की जो जीने की आकांक्षा है उस पर ये दोनों बुढापा और मृत्यु ही वे दो अवस्थायें हैं बोधियवतार का कहना है वह सभी छ प्रत्ययों के होने से उत्पन्न होता है , स्वतन्त्र उत्पत्ति किसी की भी नहीं है । तना चित्त की ही एक ऐसी अवस्था है , जो अनेक के बहुत उलझे हुए ऐसे सहयोग से उत्पन्न है , जो सब मिलकर किसी न किसी क्रिया के माध्यम से अपने आप को ज्ञात प्रकट करते हैं । इस सहयोग में मुख्य भाग चरित्र का है ।

भगवान बुद्ध ने अपने वाराणसी में दिये गये प्रथम प्रवचन में ही कहा भिक्षुओं , जो प्रव्रजित है , उसे दो अन्तों से , सीमा पर पहुंचे दो प्रकार के आचरण से दूर दूर रहना चाहिये । । प्रत्येक धर्म आदमी को दुःख से ज्ञात मुक्ति दिलाने का पथ दिखाने का वायदा करता है । दुःख के कारणों की यथार्थ समझ नित्य आत्मा का मिथ्यात्व आदमी को और उस आसानी से दुख को दूर करने का रास्ता दिखा देगा ।

काम – भोग प्रधान जीवन से , क्योंकि यह दुर्बल बनाने वाला है , गंवारपन है , कमीनापन है और नहीं । दूसरा जीवन पीड़ा प्रधान , क्योंकि यह दुखद होता है तथा व्यर्थ भी होता है और बेकार होता है । से बचे रहकर ही तथागत ने इन दोनों अतियों मध्यम मार्ग किया है ।

महान् सत्य है कि मार्ग पर चलने से सभी पाई . सभी इच्छाओं से मुक्त हो सकता है और लाभ प्राप्त कर सकता है । जो की गहराई में उतराई है , वह सम्यक मार्ग पर चलेगा साथ सुनिश्चित है । ये चार महान आर्यसत्य बौद्ध धर्म के सिद्धान्त कहला सकते हैं । जितनी तृष्णा है उस की जननी इच्छा है और जब तक इस की पूर्ति नहीं होती यह दुःख देती रहती है । जब इस की पूर्ति भी हो जाती है , यह पूर्ति स्थायी नहीं होती , यह पूर्ति नई इच्छाओं को जन्म देती है और उसी से नयी नयी चिन्ताएँ उत्पन्न होती हैं । उसके परमार्थ की ओर आगे बढ़ाने की बजाय साधक को उस के अपने कर्त ऐसे स्थल पर पहुंचा देगी जहाँ कोई प्रकाश नहीं है , कोई शान्ति नहीं है , कोई बुद्ध ने यह कहीं भी नहीं

कहा है , खोजबीन करने से बचो , क्योंकि यह तुम्हें की ओर से विमुख कर देगा कौर आर्य पथ से पथभ्रष्ट कर देगा । हम सुख या आनन्द के बारे में स्वरूप के कुछ भी नहीं जानते । सुख या आनन्द की पूर्वगामिनी कोई न कोई इच्छा या कामना रहती है । इच्छा या कामना की संतुष्टि के साथ आनन्द की समाप्ति हो जाती है । हमें जो कुछ सीधे सीधे प्राप्त है , वह इच्छा या कामना भर है , कष्ट मात्र । भगवान आशा नहीं है , यह तुम्हें गहरे गड्ढे में ले जाकर पटक देगी , जहाँ न है , वहाँ है ठण्ड , बंजर भूमि और स्थायी विनाश ।एक धार्मिक अधिकार वाणी का विचार धर्म से बेमेल है , क्योंकि धर्म की शिक्षा ही है कि हर आदमी स्वयं अपने आप शिल्पी है और स्वयं अपने आप को भी संरक्षण प्रदान करने की सामध्ये रखता है । आदमी के बारे में केवल पशु – शास्त्र से विचार किया जाय तो यह बात स्पष्ट हो जायगी कि आदमी एक वानरीय विशाल जानवर से अधिक कुछ नहीं । एक प्रकार से किसी बीते हुए युग के विकसित वर्ग के पशु की चमत्कार रूप सन्तान है , जो दिमाग और बुद्धि से अपने पूर्वजों की होते हुए बन्दर के स्वरूप का रुका हुआ रूप है ।

यह मान बैठना कि मनुष्य से बाहर कोई एक ऐसी अधिकार वाणी हो सकती है , जिसका कोई धार्मिक मूल्य हो , बचकाना बात है । आखिरकार यह किसी के मन की और चेतना का झुकाव ही है जो किसी की अधिकारवाणी को शक्ति प्रदान करता है । एक ईसाई पादरी की तरह एक भिक्षु कभी अधिकार वाणी का प्रयोग नहीं करता और वह स्वयं भी किसी वाणी के सामने नहीं सिर झुकाता । भगवान् बुद्ध ने जब साधक के सम्मुख अविद्या के नाश और विद्या प्राप्ति का आदर्श उपस्थित किया है तो किसी अधिकार वाणी में विश्वास करना और बिना समझे बूझे किसी भी बात को मान बैठना निष्प्रयोजन है ।

लेकिन अपने विचारों तथा अपने कर्मों को तदनुसार बदलने का भी प्रयास नहीं किया हैं , वह उस आदमी की तरह है , जिसने पाक शास्त्र पर लिखी हुई कोई पुस्तक पढ़ी भर है और वह कल्पना करता है कि वह उस पुस्तक में वर्णित विधि के अनुसार तैयार की गई मिठाई खा रहा है । हमारा अभ्यास हमारे प्रेम सम्बन्धों को परिभाजित करता है , सुख – दुःख के प्रति हमारे दृष्टिकोण को संभालता है और हमारे कार्यों को प्राणवान भी बनाता है ।

धर्म के क्षेत्र में जो गलतियां की गई हैं या होती हैं उन के मूल मे भीं रहते हैं जीववादात्मक या आध्यात्मिक विश्वास । धर्म के लिये उस का प्रथम चरण व्यापक रूप से स्वीकृत कर दुःख के अस्तित्व की बात ही सकती है

इसलिये यही योग्य है कि आदमी इस की ओर से मूंह मोड़े । बुढापे और मृत्यु से मुक्त जीवन की कामना को । इस इच्छा की पूर्ति कैसे करती है कि यदि

वह केवल किसी वानरीय कुछ ऐसी स्फुतियां अपेक्षा विशिष्ट है । अपनी कामना की जितनी भी वस्तुए हैं वे अपने अहंकार को सर्वप्रथम समय या काल के रूप में प्रकट करती हैं । यह समय ही है जिस के माध्यम से पदार्थों की अनित्यता के रूप में प्रकट होती है । क्योंकि समय के माध्यम से ही हमारे सभी मौज मस्ती शून्य में परिणित हो जाते हैं । इस के विरुद्ध यह स्पष्ट तोर पर घोषित किया गया है कि जिस का तर्क से मेल नहीं बैठता ऐसी कोई भी बात बुद्ध की शिक्षा हो ही नहीं सकती , ऐसी कोई भी बात जो तर्क की कसौटी पर नहीं जा सकती । तब हम चकित होकर पूछते हैं कि उन का क्या हुआ ? इसलिये हमारा जीवन उस रकम तरह है जो हमें तांबे के सिक्कों के रूप मिलती है और अन्त में हमें जिस की रसीद देनी पड़ती है । तांबे के सिक्के ही वे दिन हैं और मृत्यु रसीद है । जिन की ओर प्रत्येक जीवन द्रुत गति किये गये दण्ड है कि सजा हैं । स्वयं प्रकृति द्वारा घोषित किये गये दण्ड यह करते हैं कि यह जीवन संघर्ष कर रहा है और इस की भी अन्तिम पराजय है ।

दूसरा महान् सत्य है कि तृष्णा है इस दुःख का कारण, आत्मार्थ का जीवन जीने की बलवती आकांक्षा । अपने चारों ओर की परिस्थिति से उत्पन्न वेदनायें एक भी पृथक अपने आप का भ्रम पैदा करती हैं । यह भ्रामक आत्मा अपनी क्रियाशीलता का प्रदर्शन अपनी स्वार्थ मूलक इच्छाओं की पूर्ति के रूप में प्रकट करता है , जो कि आदमी को कष्टों और दुःख के मायाजाल में भी फंसा लेती हैं । अनुभव से , और ज्ञान से ही आदमी में वह आत्म विश्वास पैदा हो सकता है दृढ इच्छा शक्ति पैदा हो सकती है कि आदमी बिना लड़खड़ाये अपने काम को करके लेकिन इस बात को हमेशा ध्यान में रखना चाहिये कि इच्छाशक्ति का कोई भी स्वतंत्र अस्तित्व अपना कहीं नहीं है । यह एक प्रवृत्ति का भाग है जो एक इरादे के बजाये दूसरे इरादे से प्रभावित हो सकती है । जीवन के तथाकथित मजे सुमधुर ध्वनियां हैं जो आदमी को दुःख की ओर आकर्षित करती हैं । तीसरा महान् सत्य है कि तृष्णा को त्यागने से ही दुःख का निदान संभव है । जब तृष्णा का सर्वनाश होता है , तभी दुःख का अनिवार्यतः अंतभी होता है । आदमी का समस्त सार ही कभी न बुझने वाली हजारों इच्छाओं की प्यास मात्र है । बिना इस प्यास से मुक्त हुए वह दूसरे किस उपाय से दुःख क्योंकि से मुक्ति लाभ कर भी सकता है।

कोई भी आदमी वास्तव में अपने आप को बौद्ध नहीं कह सकता यदि वह अष्टांगिक मार्ग का पथिक हो नहीं है । केवल अध्ययन और भगवान बुद्ध की बताई शिक्षाओं के बारे में छानबीन करने मात्र से आदमी तब तक भगवान बौद्ध नहीं माना जा सकता जब तक वह साथ ही साथ आर्य मार्ग अष्टांगिक पर नहीं चलता ।

लेकिन किसी काल्पनिक आत्मा में जो विश्वास कर बैठना है और किसी परा – प्राकृतिक अस्तित्व पर जो निर्भर ज्ञात रहना है वह आदमी को ऐसे गलत रास्ते पर डाल देगा कि उस की बुद्धि एकदम जड़ हो जायगी । वह दुःख से छुटकारा पाने के जब लिये एक कदम भी न उठा सकेगा

जिसे अधिकार कहते हैं वह या तो किसी एक ऐसे आदमी के लिये होता है जिसे आदमी अज्ञात मन से ऐसा स्वीकार करता है और जिस के बारे में वह स्वयं यह नहीं जानता कि कोई उसे ऐसा करने की प्रेरणा क्यों दे रहा है या सोच समझकर ऐसी स्वीकार मान्यता को करता है ।आदमी की जब सभी दूसरी इच्छाओं की पूर्ति हो जाने पर भी उस की एक इच्छा अपूर्ण ही रहती है । आत्म – रक्षा के लिये स्वाभाविक आन्तरिक चाह ने के भीतर परिवर्तन रहित मृत्यु विहीन जीवन की कामना को जन्म दे दिया है ।

इस उत्पत्ति परिणाम स्वरूप आदमी में प्रकट करती हैं । लेकिन इसी विकास के फलस्वरूप उसे अपने जैसे लोगों क रह` बच गई है जो अपने आप को एक नीति – विहीन समाज के सदस्य के अनुरूप साथ परिवारों की शक्ल में एकाबद्ध होने की आवश्यकता पड़ी है । इसी से सामाजिक जीवन नीति आश्रित जीवन विकसित हभी ुआ है । यह साधक को अन्तर्दृष्टि प्रदान करने वाला है मध्यम मार्ग , बुद्धि देने वाला है , शान्ति का दाता है और निर्वाण तक पहुंचा देने वाला है ज्ञान देने वाला है , । जिसे हम पापपूर्ण चेतना कहते हैं , यही श्रेष्ठ मार्ग अष्टांगिक है । वह इस से अधिक कुछ नहीं कि आदमी को ख्याल हो जाता है कि व्यक्तिगत जीवन सम्बन्धी किये जाने वाले कार्यों का सामाजिक या नैतिक जीवन से सम्बन्धित कार्यों से मेल नहीं बैठता है। जितनी मात्रा में सामाजिक तथ नैतिक मांग में विकास होता है उतनी मात्रा में यह चेतना विकसित भी होती है ।

आदमी अपनी या अरुचिकर होने की चिन्ता न कर अपने तर्क की प्रामाणिकता को देखता है तो सत्य तक पहुंचना सम्भव हो सकता है । यह बौद्ध धर्म की शानदार ऊंचाइयों में से एक और ऊंचाई है कि यह तर्क एवं विज्ञान की बात मानता है और अन्ध विश्वास तथा अधिकारवाणी की एक नहीं हीसुनता । जिस ने बेवजह की इच्छाओं और बाधाओं को एक ओर रख दिया है केवल वही यह अनुभव कर भी सकता है जिस शक्ति से वह दुख और कष्ट सहने से मुकाबला करता है वह प्राकृतिक है , परा प्राकृतिक नहीं । तर्क और विज्ञान मापदण्ड ही इस बात की गारण्टी है कि आदमी सम्पर्क कर्मान्त , सम्यक् चिन्तन एवं सम्यक् शान्ति के प्रेति अति वाञ्छित अवसरों को हाथ से न जाने देगा ।

सच्चे विभंग में प्रश्न पूछा गया है कि सम्यक् संकल्प क्या है ? संकल्प है सभी के ही साथ मैत्रीपूर्वक जीने की आकांक्षा , आकांक्षा मे बीमारों के लिये औषधी बनाऊं और तब तक उन सभी की चिकित्सा करता रहें जब तक वे रोग से सर्वथा मुक्त न हो जायें में लोगों की भय और और सभी के प्राणी जो यह परित्याग करने यथार्थ मानवता की प्यास पड़े तो कितनी खुशी का जो भाव सफल होता हैं , में भ्झी पीछे पाव नहीं हटाऊंगा । जो आदमी शुद्ध है , पवित्र है उस के लिये हर महीना ही फल्गु का पवित्र महीना है । जो शुद्ध है , पवित्र है वह हमेशा ही सती है । सुकर्मों के लिये उस का व्रत चिरस्थायी है । हे ब्राह्मण अपना स्नान यही करो , अभी करो ! प्राणियों प्रति करुणाई` । यदि पुण्य नहीं करते , यदि तुम प्राणी – हिंसा नहीं करते , यदि तुम चोरी नहीं करते , यदि तुम आत्म त्यागी हो , तो तुम्हें गया जाने से क्या मिलने वाला है ? कहीं का पानी तुम्हारे लिये मार्ग गया का जल है । बौद्ध के धर्म में कोई भी व्रतों के दिन नहीं हैं । दूसरे धर्म सिखाते हैं निराहार रहो और प्रार्थना करो ।

मैं निराश नहीं होऊंगा क्योंकि मैं सभी प्राणियों को उस पार पहुंचाने का संकल्प किया है इसलिये मेरा यह निश्चय मेरे लिये अनिवार्य रूप से करणीय कर ही है ।

वैदिकोत्तरकाल में कर्मकाण्ड ने और जोर पकड़ लिया था , धर्म में लगभग जादू – टोना ही बन गया था । रीति रिवाज भी देवताओं की तरह पूज्य माने जाने भी लगे थे । आदमी के कल्याण के लिये रीति रिवाज अनिवार्य थे । पत्रि ग्रन्थों का पाठ मुक्ति प्राप्ति का प्रतिक साधन माना जाने लगा और कहीं कहीं तो देवता विशेष का नाम वह तो एक ही बार लेने से जन्म भर किये मानको को गये सभी पापों से छुट्टी मिल जाती थी । क्यों कि तथागत की शिक्षाएँ किसी भी देवता के वह तो विश्वास पर सदैव आश्रित नहीं प्राणियों में मिलनसारी की वृद्धि करनी हो तो करुणा सर्वश्रेष्ठ साधन है । उदारता , दानशीलता , सामञ्जस्य , कृतज्ञता और दूसरों के सुख दुःख में हिस्सा बांटना करुणा के क्रियात्मक रूप हैं । बोधिचर्यावतार का कथन है कि दानशीलता हम सभी के कल्याण के लिये कुछ करने की प्रवृत्ति समझते हैं । किसी को दान कैसे करना है, इसकी कथा है कि पुष्पपुर में वह तो एक भिक्षापात्र था भगवान बुद्ध का, कोई गरीब यदि उस पुण्य को मापना हो तो यह चित्त की प्रवृत्ति के मापदण्ड से मापा जा सकेगा । एक में एक फूल डाल देता था , तो वह

भरा भरा दिखता था , लेकिन धनी लोग जब हजारों रुपये डालते थे , तब भी शायद ही अपने आपको भरा भरा प्रदर्शित करता हो ।

माना जाए तो रीति – रिवाज ये सब दिखावटी सहारे हैं , ये जब ठीक दिशा का निर्देश करने वाले होते हैं , तब भी किसी भी तरह दुःख का अन्त करने के वास्तविक साधन नहीं बनते । जो लोग बुराई बहुत से रीति – रिवाजों का पालन करने में लगे रहते हैं , वे राग द्वेष , मोह रूपी क्लेशों से कभी नहीं उबरते हैं । बुद्य का मानना था कि यदि गंगा में स्नान करने से पुण्य होता हो , तब मछलियां मारने वाले लोग सर्वाधिक पुण्यवान माने जायेंगे उन से भी अधिक वे मछलियां और पशु जो दिन रात गंगा जल में ही तैरते रहते हैं । बाधाओं पर विजय प्राप्त कर लेने का मतलब है किसम्पन्न हो जाना स्रोत में आ पड़ना कभी न कभी अर्हत्व होना निश्चित हो गया ।

उस की एक ही आकांक्षा होगी कि उस का दिमाग उद्देश की प्राप्ति और सम्बन्धी परस्पर भी विरोधी मान्यताओं और सन्देहों से मुक्त हो जाय , और वह भगवान बुद्ध के नीति धर्म का बहुत ही गहराई से अध्ययन करके और तदनुसार अपने आचरण को मोड़ कर भगवान बुद्ध की वन्दना भी करता भी रहे परस्पर पार्थक्य के विचार से मुक्ति मिल जाय । उस की यह भी आकांक्षा रहेगी कि वह स्वयें समुद्र म जो ें डूब रहे हैं , वहां से वे बच निकले । इसके लिये वे सब उपाय किये जायें जो उसे महान शान्ति के प्रक की ओर ले जाते हैं ।

जिनकी कोमल भावना प्रधान जीवन की उपेक्षा ,परिश्रम किये निजी आत्मा का त्याग , , अहंकार का , लौकिक सुखों के प्रति के नियमों का पालन जैसे किसी सैनिक के लिये अनिवार्य गुण है वैसे किसी भी बोधि की आकांक्षा प्राप्त करने वाले के लिये भी । कर्तव्य के प्रति बिना , कोई भी साधक क्रोध का , ईर्ष्या का आसक्ति का नाश कैसे कर सकता है ? इसके बिना कोई भी साधक विरोधी कारणों को कैसे दबाकर रख सकता है बोधि कैसे प्राप्त कर सकता है ?ें चित्त को साफ रखना और पवित्रता पा कर सकना ।

कोई भी आदमी अपने होकर किसी दुखद स्थिति को नही अपनायेगा । बोधिचर्यावतार का कथन है , यदि स्वेच्छा मात्र से सिद्धि प्राप्त हो सकती हो सभी प्राणियों को, तो प्राणी दुखी नहीं होगा , क्योंकि दुःख को तो कोई भी नहीं चाहता । आदमी के जीवन को आप प्रकृति और समाज से पृथक नहीं कर सकते । वह उस सर्व से पृथक नहीं किया जा सकता , जिसका एक सीमित व्यक्तित्व के नाते वह व्यक्ति स्वयं एक भाग है ।

रीति – रिवाजों से , पशुओं के बलिदानों से , काम प्रार्थनाओं से मन्त्रों से कुछ भी प्रगति नहीं हो सकती । इसलिये इन सब को निषिद्ध ठहराया है । बताया गया है कि एक बार प्रवचन करते समय शाक्य मूर्ति को छीक आ गई । भिक्षुओं ने भी तथागत चिरंजीवी हो चिल्लाकर प्रवचन में बाधा डालते हैं । भगवान बुद्ध ने सुनने वालों को कह किसी आदमी ने छींका हो और तुम चिल्लाओ कि बाप दीर्घजीवी क्या तुम्हारे चिल्लाने से वह चिरंजीवी हो जा सकता है ? अथवा क्या उस की तुरन्त मृत्यु भी हो सकती है ? एक दूसरे अवसर पर एक ज्ञानी ब्राह्मण ने तथागत को कहा कि बाहुका नदी में स्नान करने के बाद आदमी के पाप धुल जाते हैं हैं , और उससे पुण्य लाभ सुन्दरी होता है ।

कर्मों से उत्पन्न जड़ता और वह बाधक शक्ति जिस में हमारे पूर्वकर्मों का संग्रह है , केवल आकांक्षाओं से परास्त नहीं की जा सकती । मुझे सभी प्राणियों का भार उठाना ही होगा । दोधि प्राप्ति के कर्तव्य के प्रति दृढ निश्चय के साथ ही इस आत्म संस्कृति और आत्म संयम के कार्यक्रम पर पैर आगे बढ़ाना चाहिये । यदि उस अभ्यास का जो आदर्श की प्राप्ति सुलभ बना सकता है सहयोग न हो तो केवल संकल्प और निश्चय कुछ विशेष नहीं कर सकते । कर्तव्य के प्रति आत्म संयम के बिना और सहनशीलता के बिना अपनी शक्ति को किसी ऊंचे आदर्श की प्राप्ति के लिये केन्द्रित कर सकना असम्भव है और असम्भव भी है।

इस में केवल कुछ आत्म त्याग का ही समावेश नहीं होता बल्कि किसी दूसरे गरजू व्यक्ति की गरज पूरी करने से मन में जो प्रसन्नता होती है उस का भी समावेश है । दानशीलता का कैसे भ्यास करना चाहिये यह धर्म में सविस्तार स्पष्ट कर दिया गया है । यदि कोई कुछ मांगे और अपनी सामर्थ्य के भीतर हो , तो उसे वह वस्तु दे देनी चाहिये और उसे उस का आनन्द लेने देना चाहिये ।

हाँ , यदि इस से किसी ऐसे आदमी का लाभ होने वाला हो , जो अपने आप की भी अपेक्षा अधिक अधिकारी हो , तो बात दूसरी है । अपनी चमड़ी का दान देना , अपने मांस का दान देना अच्छी बात है , लेकिन आध्यात्मिक भोजन का दान देना सद्धर्म का प्रचार करना अधिक अच्छा है , क्योंकि सद्धर्म के प्रचार से बढ़कर और कहीं कुछ नहीं है । यदि प्राणियों के लिये दूसरे किन्हीं उपायों से अभय की व्यवस्था की जा सके तो अपने शरीर को किसी सिंह द्वारा निगला देने की कोई आवश्यकता नहीं ।

दान देना दान देने वाले को भी सुख पहुंचाता है , प्रतिग्राहक को भी , लेकिन प्रतिग्राहक का दर्जा दाता की अपेक्षा नीचा है । सच्चा दान वह है जिस में जाति पाति का कुछ भी विचार नहीं किया जाता और बदले में किसी भी चीज़ की आशा

नहीं की जाती । बिना प्रेम के यदि कुछ किया जाता है भले ही वह मिठाइयों का ही ढेर हो तब भी उस की कुछ कीमत नहीं होती प्रेम में यदि जंगली चावल भी दिया जाय तो उस की भी बहुत लगती है ।

यदि ऐसी परिस्थति आये कि लोगों की जान के लिये खतरा पैदा हो गया हो तो हर प्रकार की कोशिश करके उन्हें खतरे से बचा लेना चाहिये और उन में निर्भयता का भाव पैदा करना चाहिये । बोधिसत्व से इतनी ही आशा नहीं की जाती कि वह दाता सिद्ध हो , बल्कि यह भी कि वह दयावान हो और क्षमाशील हो । अनाय पिण्डिक जो अनायों का संरक्षक था , मैत्रीयुक्त था , और दयावान था ।

वे अहंकार पूरित नहीं होने चाहिये और उन में कड़वाहट भी नहीं होनी चाहिये । उसे बड़े आदमियों के बारे में गप्पें नहीं मारनी चाहिये । उसे खाने – पीने की चर्चा , कपड़ों की चर्चा सुगन्धित द्रव्यों की चर्चा , पलंगों की चर्चा , सामानों की चर्चा , स्त्रियों की चर्चा , योद्धाओं की चर्चा , देवताओं की चर्चा , भाग्य बताने वालों की चर्चा , छिपे हुए खजानों की चर्चा , भूत – प्रेतों की चर्चा , और जो चीजें हैं ही नहीं उन के बारे में बेकार की चर्चा करनी ही नहीं चाहिये । जो कुछ भी वह बोले वह करुणापूर्ण होना चाहिये और उस से सम्बन्धित विचार शुद्ध होना चाहिये ।

इसलिये जहाँ तक उस का व्यक्तिजीवन है , यदि वह उसका कुछ भी करना चाहता है तो उस पर प्रतिबन्ध नहीं लगाया जा सकता । लेकिन बौद्ध की स्थिति सर्वथा भिन्न है । उसके लिये मनुष्य होकर जन्म ग्रहण करना बड़ी बात है , क्योंकि मनुष्य जन्म में ही वह राग , द्वेष और मोह के विरुद्ध संघर्ष कर सकता है । उदारता का अपना कुछ भी मूल्य हो , उसका भी अतिरेक नहीं होना चाहिये । आदमी की दानशीलता उस की आध्यात्मिक उन्नति में बाधक नहीं होनी चाहिये ।

तब भगवान बुद्ध ने कहा , न बाहुका , न अधिका न प्रयाग की सरस्वती भी ओर न बहुमति ही किसी भी मुर्ख के तुम मिथ्या पापों को धो सकती है , भले ही वह कितनी ही बार इन नदियों में स्नान करता रहे । सुन्दरी क्या कर सकती है ? और प्रयाग क्या कर सकती है ? बोर बाहुका नदी भी क्या कर सकती है ? कोई भी नदी पापी के पाप नहीं धो सकती , इसकी ईर्ष्या या अपराधी के अपराध ।

दान का उद्देश्य है अमीरों की आत्म संतुष्टि और गरीबों का कल्याण। भगवान बुद्ध ने उस के बारे में यही कहा था कि वह सादर दान देता है और का समाजीकरण करके गरीबों को नैतिक दृष्टि से ऊपर उठाना । हर बौद्ध का अपने मानव – बन्धु के प्रति यह कर्तव्य है कि वह धर्म का प्रचार करे । यह धर्म आदमी को आत्म – निर्भर बनाता है और भातृ प्रेम का शिक्षण प्रदान करता है ।

ध्यान – भावना का भी शारीरिक पक्ष भले ही हो और उसे स्वास्थ्य सम्बन्धी नियमों से भी भले ही लेना देना हो , लेकिन यह प्रधान रूप से मानसिक तथा नैतिक है , इस का प्रधान उद्देश्य है विज्ञान या चित्त के वास्तविक रूप को हृदयङ्गम कर सकना और इस नियमित का मतलब है कि आदमी समझ सकना । बौद्ध धर्म में बड़े से बड़ा योगी बोधिसत्व है जो छह पारमिताओं का अभ्यास करता है । ब्राह्मण – योगी का प्रयास होता है सर्वव्यापक ब्रह्म में लीन हो जाना ।

जहाँ भी और जब भी किसी भी आदमी को जीवकोपार्जन करना होता है तो कुछ लोग तो धोखे और चालाकी से अपनी जीविका कमाते हैं , अधिकांश गुलामों की तरह परिश्रम करके गुणों का विकास करने के लिये , महानता और चरित्र की श्रेष्ठता संपादन करने के लिये आदमी को दूसरों के परिश्रम की कमाई ही खानी पड़ेगी । इसलिये इस में कुछ भी आश्चर्य नहीं होना चाहिये कि तथागत को भी सत्य प्रचारक का जीवन अपनाना पड़ा ।

इस आर्य अष्टांगिक मार्ग पर गमन करने का उद्देश्य सभी चित्त – मलों (क्लेशों) की शुद्धि और सभी परवों (आवरणों) के हटाने से कम नहीं है , इसलिये बाह्य जीवन में परिवर्तन करने मात्र से कुछ बहुत सार की प्राप्ति होनेवाली नहीं है । दिमाग की आमूल सफाई होनी चाहिये । यह जो व्यक्ति की अपनी भीतरी पवित्रता है वह सम्यक् व्यायाम , सम्यक् स्मृति और सम्यक् समाधि से होने वाली है ।

जो आदमी अपना सम्पूर्ण विकास करना चाहता है उसे स्वास्थ्य के सभी नियमों का सावधानीपूर्वक पालन करना चाहिये । खान – पान सम्बन्धी नियमों का पालन , लम्बे सांस लेने का अभ्यास , हर समय ताजी हवा , ऐसे वस्त्रों का पहनना जो सारे शरीर पर से हवा के आवागमन में बाधक न हो , बार बार स्नान करने का अभ्यास , विश्राम , और पर्याप्त व्यायाम – ये सभी आवश्यक हैं ।

सम्यक् व्यायाम में सम्यक् प्रधानों का प्रमुख स्थान हैं । ऐसा प्रयास कि हम में जो दुर्गुण नहीं है व्यायाम में वह चले न आये , हम में जो दुर्गुण हैं वह जैसे के तैसे बने न रह जायें , हम में जो सद्गुण हैं , वह कहीं हम में से चले न जायें

और हम में जो सद्गुण नहीं हैं , सम्यक् व्यायाम का ाय हैं कि एक अत्यन्त विकसित इच्छाशक्ति अर्थात् आत्म – संयम की सामर्थ्य को प्राप्त करना ।

इन कोशिशों के बारे में यह नहीं सोचना चाहिये कि ये भी आत्मपीड़ा के सदृश शरीर को दी जानेवाली कोई तपस्यायें ही हैं । काय – क्लेश को स्पष्ट तौर पर और जान बूझ कर भगवान बुद्ध ने वर्जित किया है । इन्द्रिय भावना सुत्त में तथागत पारासरिय नाम के एक ब्राह्मण तपस्वी के शिष्य से पूछते हैं कि तुम्हारा गुरु इन्द्रियों की साधना को लेकर तुम्हारा क्या शिक्षण करता है ? उत्तर दिया गया है कि वह न तो आँखों से देखता है , और न कानों से सुनता है ।

इस में कुछ आश्चर्य नहीं कि बौद्ध ध्यान के इतने बढ़िया परिणाम हुए हैं , जैसे कि आधुनिक जापानी नागरिक वह आत्म – संयम जो हमें किसी बाह्य परिवर्तन के द्वारा अपने भीतरी परि के भयानक जबड़ों की ओर भी आगे बढ़ना सिखाया जाता है , संक्षेप में वे सब गुण वर्तन को प्रकट न होने देने की सामथ्यं देता है , वे नपे तुले कदम जिनसे हमें मृत्यु जिन के कारण एक आधुनिक जापानी लोगों की दृष्टि में विचित्र सा प्राणी लगने लगता है , स्पष्ट तौर पर उस प्रभाव का परिणाम हैं जो सीधे या घुमा फिरा कर हमारी उस बीती हुई चेतना पर पड़ा है , जो जैन साधुओं द्वारा सिखाये गये ध्यान के बौद्ध सिद्धान्त का परिणाम है । जो लोग आर्य मार्ग अष्टांगिक पर आगे ही आगे कदम बढ़ाना चाहते हैं उन के रास्ते में दस बाघायें (संयोजन) आती हैं जिन्हें दूर करना अनिवार्य है ।

5 बोद्व ने अपने भिक्षुओं को अलग दिषाओं में भेजा और उन्हें ब्रहम्चर्य का पालन करने को कहा।

(भगवान बुद्व आर एस रमन, निधि बुक सेन्टर दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2012 पृ 85)

आदमी का भीतरी जीवन तभी सशक्त बनेगा जब यह बाह्य संसार में कर्मों का रूप ग्रहण करेगा । इसी लिये सम्यक् जीविका के रूप में प्रकटीकरण होना चाहिये । ' मिथ्या – भाषण से बचना , चुगलखोरी से बचना , कठोर वाणी से बचना तथा ब्यर्थ की बातचीत से विरत रहना सम्यक् वाणी कहलाता है । जो व्यक्ति उपर उठना चाहता है उस के शब्द मधुर होने चाहिये , असंदिग्ध होने चाहिये , दूसरों को सुधार करने में मदद करने वाले और उत्साहवर्धक होने चाहिये ।

जो बहरे हैं , उन की इन्द्रियों सर्वाधिक विकसित होनी चाहिये । यह देख के पास कोई उत्तर नहीं था , तथागत ने आनन्द को सम्बोधित मार्ग अष्टांगिक की सर्वश्रेष्ठ इन्द्रिय सुंदर पद्धति समझायी है । इस के अनुसार साधक को कहा जाता है कि वह प्रत्येक वेदना को भले ही वह सुखद – वेदना हो या दुःखद वेदना हो , और चिन्तन ना सीखें स्तर पर यह समझे कि यह वेदना मात्र है और नीति के स्तर पर उसे उपेक्षा से निम्नस्तरीय माने , क्योंकि वह उसी को प्राप्त कराना चाहता है और को बनाये रखना चाहता है ।

शनैः शनैः आदमी के कर्तव्य की भावना अपना घर बना लेती है और उस से उस की वासना को बुला खेल खेलने की छुट्टी नहीं मिलती । जब वह अपनी वासना पर काबू बनाये रखने का सतत प्रयास करता है , तो उस की नैतिकता की भावना अधिकाधिक क्रियाशील हो जाती है , उसे यह आवश्यक लगने लगता है कि उस की बुरी प्रवृत्ति के जो भी अवशेष बचे हो , वह मिटा दिये जा सके , और वह संकल्प करता है कि वह भविष्य में संयत रहेगा । उसे उस श्रेष्ठ मार्ग की एक झांकी सी मिल गई है जो हृदय में निर्माण की ओर ले जाता । जितनी अधिक मात्रा में यह सचेतन आत्मसंयम प्राणी के मन में रहता है , उतना ही अधिक उसे लगता है कि प्रतिक्रियात्मक कार्यशीलता की ओर अग्रसर होना चाहिये ।

इसलिये हमारा यहाँ जिस अर्थ से अभि बौद्ध धर्म का प्राप्य है , हम उसी में सीमित रहेंगे । जिस ज्ञान में अन्तर्दृष्टि हो और जिस के साथ पुण्यों का संयोग हो , वह ज्ञान ही प्रज्ञा है । अन्तर्दृष्टि से हमारा अभिप्राय है कि आदमी के लिये जो कुछ भी मूल्यवान है उस के केन्द्र में जो वास्तविक है उसे हृदयङ्गम कर सकने की सामर्थ्य । इस बात को अस्वीकार करने का मतलब है कि आदमी और आदमी के बीच के किसी भी व्यवहार को संभव न मानना । लोग यह मानते हैं कि एक खास आदमी , खास परिस्थिति में एक खास तरह से ही बर्ताव करेगा , क्योंकि उन्होंने अपने निजी अनुभव से जाना है कि उस खास आदमी ने पहले भी वैसी ही खास अवस्था में उसी तरह व्यवहार किया है या कुछ दूसरे लोगों ने वैसी ही अवस्था में वैसी ही तरह व्यवहार किया है ।

और ज्ञान से हमारा अभिप्राय है कार्य की वजह कारण या प्रतीत्य समुत्पाद के नियम की पर्याप्त समझ , काम (शरीर) के यथार्थ स्वभाव की समझ , सुख और दुःख के यथार्थ स्वरूप की समझ , चित्त की क्रियाशीलता की समझ और विश्व में जितने भी चित्त के विषय या धर्म है , उनकी समझ । जब बोधिसत्व को विद्या मिलनी होगी तो यह बात उस की समझ में आयेगी कि अनेक हालात के मेल – जोल से सभी चीजें अस्तित्व में आती हैं , कि सभी चीजें अनित्य हैं , कि न कहीं कोई आत्मा है और न परमात्मा है , और कि इन अविद्या – प्रस्त रहने के ही कारण सभी प्राणी नाना प्रकार से सभी के बारे में शारीरिक तथा मानसिक कष्ट भोगते हैं ।

वह आदमी की इस बात में सहायता करता है कि आदमी अपने आप को और अच्छी तरह जानने लगता है , अपनी जमीर का और बारीकी से विश्लेषण कर सकता है और अपने चित्त को प्रकाशमान बना सकता है । ध्यान की चार

अवस्थायें हैं– पहली अवस्था में वितर्क या विचार और प्रीति या सुख तथा एकाग्रता विद्यमान रहते हैं पाचों अंग । दूसरे तथा तीसरे ध्यान में ध्यानांगों का एक एक अंग कम होता जाता है और अन्त में मात्र एकाग्रता शेष रह जाती है ।

6 अधिकांष जैन और बौद्व ब्राहमणों एवं क्षत्रिय ही थे जो तत्व चिंतन के दृष्टि भेद के कारण जैन एवं बौद्व कहलाऐं।

(वैदिक जैन और आधुनिक जीवन पुष्पराज दिल्ली प्रथम संस्करण 1996 पृ 2)

यह एक अत्यंत उलझे हुए सम्मिश्रण का परिणाम है , वंशानुगतित्व , पैतृक , जन्म ग्रहण करने के बाद की शारीरिक स्थितियां , शिक्षण और अनुभव उस के स्वरूप को स्थिर करते हैं । इस मानसिक क्रियाशीलता का एक बहुत थोड़ा सा हिस्सा ही चित्त के निर्माण में सहयोगी होता है और निश्चय का स्वरूप ग्रहण करता है । निश्चय के फलस्वरूप जो कार्य या जो भी हलचल होती है , वह उन प्रवृत्तियों , उन वेदनाओं , उन संकल्पों , उन विचारों का परिणाम है जो कि एक चुनाव की शक्ल में सम्मिश्रित हो गये हैं । इस लिये चुनाव किसी भी चीज का कारण नहीं है , वह स्वयं परिणाम निर्णायक शक्ति उन भिन्न भिन्न आकर्षणों को तौलती है , जिन के मूल में भिन्न भिन्न इरादे रहते हैं और उन में जो सबसे अधिक तेज आकर्षण होता है , वह बाजी मार ले जाता है ।

इस प्रकार वेदनाओं के प्रति चित्त का दृष्टिकोण और विश्लेषणात्मक हो जाता है और तब उस की प्रजा निश्चय है कि इस वेदना का कैसे और कितनी मात्रा में मजा लूटना चाहिये, के प्रति उत्साह होने से और प्रयास के सतत जारी रहने से ही आत्म होता है । कहा ही है कि दोधिचर्यावतार में बोधि में स्थित है , जहाँ दीये नहीं , वहीं पुष्य नहीं । जो भी बोधिप्राप्ति की आकांक्षा करता है । उसे एक योद्धा ही होना चाहिये , क्योंकि उसे सम्पूर्ण रूप से शीलवान् बनने के श्रेष्ठ पराक्रम के लिये , श्रेष्ठ बोधि के लिये युद्ध करना ही पड़ता है ।

धम्मपद का कहना है कि तोतापन्न फल संसार भर के राज्य से बढ़कर हैं , स्वर्ग लाभ से बढ़ कर है सभी लोगों पर के स्वामित्व से बढ़कर है , यह आरम्भिक अवस्था इस बात की गारण्टी नहीं है कि आदमी फिर पीछे की ओर नहीं मुड़ जायगा । जो आदमी आत्म – दृष्टि के व्यामोह से मुक्त हो गया है , जिस के मन में चिकित्सा नहीं रही है और जो शीलव्रत परामाश से भी मुक्त है , लेकिन जब तक उस ने अगले दो संयोजन कामुकता और प्रतिध का नाश नहीं कर दिया है , तब तक उस के पीछे लौटने के अवसर एकदम शून्य नहीं हुए हैं ।

सम्यक् कर्मान्त का सीधा प्रतिफल है सम्यक् आजीविका । ऊंचा आध्यात्मिक जीवन बिताने की इच्छा रखने वाले हर साधक की कुछ न कुछ जीविका होनी ही चाहिये । अपने संरक्षक को सलाम करते रहने और फर्श को खुरचते रहने से किसी के भी मन में आत्म विश्वास पैदा नहीं हो सकता , साहस नहीं आ सकता , आत्म गौरव और इज्जत का भाव पैदा नहीं हो सकता ।

जिन के दिल में पाप होता है , लेकिन मधुर वाणी बोलते हैं , वे उन घड़ों के समान होते हैं जिन के मुंह पर अमृत लगा होता है , लेकिन विष भरे होते हैं । यह विस्तर का वचन है । उचित लाभ और वाणी से स्वार्थपरता को निकाल बाहर करने के साथ ही साथ आदमी के कार्यों में भी अहंता का लेश भी नहीं होना चाहिये । इसमें सभी प्राणियों के सुख के लिये अपने सभी मौज – मेलों का परित्याग करता हूँ बोधि चर्यावतार के शब्द है । सम्यक कर्मान्त से उत्पन्न होने वाली व्यक्ति की अपनी प्रसन्नता नहीं हैं । सम्यक् कर्मान्त में श्रेष्ठतर जीवन को जो कुछ भी पलटा वाला है , उस सब से बचकर रहना है और जो भी श्रेष्ठ कर्म हैं , उन सभी का करना है ।एक बौद्ध मठाधीश के प्रवचन में उद्धृत चन्द्रदीप समाधी सूत्र के अनुसार ध्यान – भावना का अभ्यास करने वालों को निम्नलिखित दस लाभ होते हैं , जब आदमी विधिपूर्वक ध्यान – भावना का अभ्यास करने लगता हैं उस की सभी इन्द्रियां शान्त और गम्भीर हो जाती हैं और उसे पता भी नहीं लगता , वह अपने इस अभ्यास का मजा लेने लगता है । मैत्री – भावना उस के हृदय को ग्रास लेती है और वह सभी प्राणियों से अपने भाई – बहनों की तरह प्रेम करने लगता है ।

यह तो वास्तव में सत्य है कि हर आदमी यह विश्वास करता है कि वह जिस चीज को प्राप्त करना चाहता है , उस का चुनाव उस विषय में निर्णायक होता है । लेकिन इस का यह मतलब नहीं कि वह चुनाव भी अपने में चेतसिकों का सम्मिश्रण नहीं । इस बात से कौन इनकार करेगा कि हमें जिस प्रकार के सुख दुःख भोगने की संभावना रहती है , उस से हमारा चुनाव प्रभावित होता हैं ।

यदि हम यह मान ले कि हमारे चुनाव के मूल में कोई प्रत्यय नहीं होता तो इस का वही अभिप्राय होगा कि कोई भी पागल आदमी जो बेसमझी की बातें करता हैं वही व्यवहार का सामान्य स्तर है और उसी के साथ हमें सभी के आचरण की तुलना करनी चाहिये । फिर यदि चुनाव बिना प्रत्यय के हो , तो हर चुनाव का परिणाम सुख ही होना चाहिये ।

वह स्वतन्त्रता के प्रति पूर्णरूप से जागरूक होता है । इस से आगे वह कुशल कर्म छोड़कर और कुछ कर ही नहीं सकता । लेकिन बिना जाने मशीन के एक पुर्जे की तरह , जैसे आरम्भिक अवस्था के प्राणी करते हैं कुछ भी करने की बजाय

वह जान बूझ कर पुष्य संग्रह करने के लिये करता है । वह दूसरों का उपकार करता है , इसलिये नहीं कि दूसरे उसका उपकार करेंगे , बल्कि ऐसा करके वह स्वयं अपना उपकार कर रहा होता है ।

शील के अभ्यास के अन्तर्गत आते हैं सभी शीलों का अक्षरशः पालन , इरादे की पवित्रता , अपने आप को लेकर विनम्रता , किसी भी छोटे से छोटे शील का उल्लंघन हो जाने पर लज्जा , भय और अनुताप की अनुभूति , किसी को भी दोषारोपण के लिये अवकाश न देना , ऐसे कार्य करना जिन का अन्तिम परिणाम सन्तोष हो , और सभी प्राणियों को अकुशल – कर्मों का त्याग कर कुशल कर्म करने की प्रेरणा करना । यथार्थ में शील का पालन वही करता है जो अकुशल – कर्म करने के लिये हर तरह की अनुकूलता रहने पर भी अकुशल – कर्म नहीं करता ।

अपरिपक्व इच्छाशक्ति का मतलब दूसरे स्नायु केन्द्रों के द्वारा कुछ स्नायु केंद्रों का अवरोध जब परस्पर विरोधी उत्तेजनाओं सद्‌गुण चले आयें सम्यक् प्रधान कहलाता है । का उद्‌गम हो तो कायँ – विशेष को दबा देना आन्दोलन से परे एक निश्चयात्मक उद्देश्य की स्थापना और इसी पर चित्त की सतत एकाग्रता । यदि कोई नया श्रमण हो और उसे किसी अवाञ्छनीय विचार ने घर दबाया हो तो तथागत ने उस विचार – विशेष से मुक्ति पाने के लिये एक के बाद एक ऐसे पांच साधनों के करने की सिफारिश की है । किसी सद्विचार की ओर मन को लगा देना अकुशल– चित्त के अनुकरण पर किये गये अकुशल– कर्म के दुष्परिणामों पर विचार करना , अकुशल– चित्त की ओर ध्यान न देना इस के पूर्व – वृत्त का विश्लेषण करना और उसे निष्प्राण बना देना , शारीरिक दबाव से मन को दबा देना । अपने देश को भूलकर भी तुम्हें हर घड़ी मृत्यु का आलिंगन करने के लिये तैयार रहना चाहिये । सफलता या विफलता की ओर से निश्चिन्त रहकर तुम्हें पवित्र धर्म – द्वार में लोगों के प्रवेश को सहज बना देना चाहिये । तुम्हें उस जनता का मार्ग – प्रदर्शन करना चाहिये जो मिथ्या – मतों के माध्यम से ठगी गई है । तुम्हें पहले दूसरों की चिन्ता करनी चाहिये , अपनी उस में दीक्षित बाद में ।

लेकिन अनुभव सिखाता है कि एक आदमी का चरित्र अनेक गुणों से निर्मित है और इस दिशा में प्रयास किया जाय तो उस में परिवर्तन लाया जा सकता है । क्योंकि एक आदमी की चेतना उस के इरादों का अनुसरण करती है और कारणों पर निर्भर करती है , वह आदमी अपने कार्यकलापों के हालात में परिवर्तन करके और विचार – पूर्वक अपनी चेतना के इरादों को नियम – बद्ध बनाकर अपने में परिवर्तन ला सकता है । जब मुदितारूपी पुष्प खिलता है तो सारी मानवता के हित में कष्ट उठाने में उसका विकास होता है । उपेक्षा भावना का अभ्यास करते समय साधक अहंकार और स्वार्थपरता से मुक्त होकर शक्ति और दबाव के सभी विचारों से ऊपर उठ गया रहता है धन और अभाव के विचारों से भी , अकाल और घृणा के विचारों के भी ऊपर , तारुण्य और वृद्धावस्था के बारे में भी , सौंदर्य और कुरूपता के बारे में भी , रोग और स्वाथ्य के बारे में भी ।

बौद्ध धर्म में शील पालन को प्रथम दर्जा दिया गया है । जितनी भी पारमितायें , निर्वाण गामी गुण है , उन में शील ही आधार हे । कुछ दूसरी का किसी खास दृष्टि से शील पारमिता की भी अपेक्षा ऊंचा स्थान हो सकता है , लेकिन उन की उपेक्षा भी की जा सकती है , लेकिन सभी कुशल – कर्मों का मूल होने से शील पारमिता की तनिक भी उपेक्षा नहीं की जा सकती ।

शील – पालन का उद्देश्य है दूसरों का उपकार करने के लिये आत्म – संरक्षण । जहाँ तक शील – पालन की बात है वह एक बड़ी हद तक नकारात्मक (निवृत्ति) प्रतीत होती है , लेकिन दान देना तो सोलह आने स्वीकारात्मक (प्रवृत्ति) है । दान शब्द के अन्तर्गत केवल अहिंसा या अदत्तादान के नियमों का पालन मात्र नहीं आता । इस से बहुत अधिक जाता है ।

भगवान बुद्ध ने भी कहा ही है , जो श्रमण या ब्राह्मण यह कहते हैं कि आदमी के मन में जो विचार उत्पन्न होते हैं , वे अपने आप पैदा होते हैं , उन का कोई मूल नहीं होता , वे भयानक तौर पर गलती पर हैं – शिक्षण कुछ विचारों को उत्पन्न किया जा सकता है और दूसरों का निरोध किया जा सकता है । सम्यक् दिशा में अग्रसर होने की ट्रेनिंग – प्राप्त चेतना हो तो यह बात समाविष्ट है ही कि साधक ने भावनाओं का अभ्यास कर हृदय को भी किसी न किसी हद तक तैयार किया है । यदि कोई ऐसी इच्छा है कि जिस की पूर्ति हो सकती है तो यह चेतना के कार्य का आरम्भ है और जब यह सशक्त हो गई तो चेतना का कार्यं पूर्णता को प्राप्त हो गया ।

अपने मन में अशुभ – भावना करके आदमी हृदय एक गहरी भी है , उस के प्रति घृणा पैदा कर लेता है । वह उस बात के दुष्परिणामों पर भी विचार करता है । इस से दूसरी भावनाओं का अभ्यास करने • अपने दिल का ताल मेल कुछ ऐसा बिठाता है कि वह सभी प्राणियों के हित और के लिये अपेक्षित साहस और शक्ति प्राप्त होती है । मंत्री – भावना करने वाला कल्याण की कामना करता है , यहां तक कि अपने पात्रओं की भी ।

दान – शीलता के कार्य सम्पन्न करते समय किसी की भी नजर न तो प्रसिद्धि पर होनी चाहिये और न इस लोक या पर – लोक में मिलने वाले किसी दूसरे लाभ पर । इस में कोई सन्देह नहीं कि आदमी दूसरों को लाभान्वित करना

चाहता है , लेकिन आदमी की नजर निर्वाण पाने पर ही रहती है । मुक्ति पाने के साधन के रूप में धर्म को कोई स्थान नहीं देता । गलती करने वालों की मिन्नतों का कारण कार्य के कारण माना गया है तो उस के नियम पर क्या प्रभाव पड़ सकता है ? यदि कोई अपराध परिणामों से पश्चाताप द्वारा , मरम्मत द्वारा ही बचा जा सकता है , दण्ड के स्वायं मूलक दण्ड के भय के द्वारा नहीं । बचा जा सकता है तो सत्य और धर्म के प्रेम द्वारा । आवश्यक शील का पालन करते हुए , उस से पुरा पुरा लाभ उठाने की कीमत से पर्याप्त ज्ञान के साथ जो ध्यान – भावना का अभ्यास किया जाता है ।

मैत्री व्यापक प्रेम से कम कुछ भी नहीं है । कोई भी आदमी मैत्री का अभ्यास तब तक नहीं कर सकता जब तक उस ने अपने हृदय को राग और द्वेष से सर्वथा परिशुद्ध न कर लिया हो । परिशुद्धता के जितने भी दूसरे साधन है , वे हृदय की शुद्धि के साधन की दृष्टि से मैत्री भावना के दस हिस्सों में से छठे हिस्से के भी बराबर नहीं है । मैत्री भावना की शक्ति की सीमा असीम है । यह अकेली सभी अपेक्षित लाभों को सुलभ करा दे सकती है । जीवन की कोई एक भी अच्छाई नहीं है , जिस पर मैत्री की छाया न पड़ी हो । करुणा भावना करते समय साधक दुःखी प्राणियों के बारे में देखता है ताकि उन के दुःख दर्द की कल्पना कर अपने हृदय सहानुभूति उत्पन्न कर सके । मुदिता – भावना में आदमी दूसरों के ऐश्वर्य की बात सोचता है और उन के सुख में आनन्दित तथा सुखी होता है । कैसी ही कठिनाई की स्थिति हो , जब बड़े से बड़ा दुर्भाग्य सिर पर आ पड़ा हो , तब भी आदमी को चाहिये कि वह मैत्री को बनाये रखे क्योंकि स्थायी संतोष बनाये रखने का यही सब से बड़ा स्रोत है ।

जब वह इन दो बाधाओं पर भी विजय पा कर लेता है , वह दूसरे अवस्था को प्राप्त होता है और सकृदागामी कहलाता है , एक बार पीछे हट सकने वाला या एक जन्म और ग्रहण करने वाला । वह तब आर्य अष्टांगिक मार्ग पर गमन करेगा , लेकिन फिर पीछे मुड़ने का खतरा रहता ही है । केवल जब समस्त कामुकता और परिधि का मूलोच्छेद हो जाता है तब उस के मन में अल्प – तम मात्रा में भी आत्मा का प्रेम उत्पन्न नहीं होता ।

हर किसी को अपने ऊपर कुछ ऐसे कर्तव्यों की जिम्मेदारी लेनी चाहिये जिस से उस की योग्यता प्रकट हो और वह अपने मानव – बन्धुओं के लिये उपयोगी सिद्ध हो सके । लेकिन ऐसा कोई भी काम साधन नहीं होना चाहिये जिस से किसी भी प्राणी को कोई हानि कर भविष्य – कथन , शकुनों और तारांगणों को देखकर भविष्यवाणियां करना हो जिस से किसी को कोई कष्ट हो । ऐसे निम्न कोटी के शिल्प जैसे स्वप्नों को हीरों जवाहरात में जादू भरे गुण बताना , पराप्राकृतिक शक्तियों की ढींग हाँकना , करिश्मे और आश्चर्यजनक बातें कर सकने की गप्पें मारना , जादू टोना करना , देवताओं की बलि चढ़ाना , जादूगरनी के कृत्य – ऐसे सभी धन्धे जिन में झूठ और ठगी का आश्रय लेना पड़ता है जो सत्य की तलाश में लगा है ऐसे साधक के करने योग्य नहीं है ।

जब किसी जिम्मेदार समझदार व्यक्ति को दुःख – निरोध दुःख , दुःख के विरोध और दुःख के समुदय , की ओर ले जानेवाली प्रतिपदा का ज्ञान हो गया तो वह ऐशो आराम की तलाश में कैसे भटकता रह सकता ? वह यह बात समझ गया है कि ऐशो आराम के चक्कर में पड़ने का मतलब है दुख की मात्रा को कई गुणा बढ़ाना । सकता है , उसे प्राप्त करने के लिये उस पथ पर आगे ही आगे की ओर अग्रसर होता रहे ।

साधक के मार्ग की तीसरी बड़ी भाषा है शील व्रत, परामर्श, रीति – रिवाज विशेषों को पवित्रता का दाता मान बैठना । वैदिक धर्म कर्मकाण्डी धर्म था । जो सोमरस को भरपूर मात्रा में बहाता है और जिस के हाथ हमेशा मक्खन से भरे रहते हैं उस से बढ़कर कोई आदमी नहीं और जो आदमियों देवताओं को बलि आदि चढ़ाने, के विषय में दरिद्र है, उस से बढ़कर निकृष्ठ आदमी नहीं । जब किसी को वस्तुओं के स्वरूप का अवबोध हो गया हो , तो वह रुपये पैसे या दूसरे आत्मार्थ के चक्कर में कैसे पड़ेगा ? जब किसी को इस बात का ज्ञान हो गया कि उसे अनन्त की यात्रा करनी है और पूर्णता प्राप्त करने का प्रयास करना है तो वह आराम की नींद कैसे सो सकता है ? उस का चित्त हमेशा बोधी की खोज में ही लगा रहेगा ।

इसी प्रकार वह उन धन्धों तक पहुंचता है , जो धोखाधड़ी का ही दूसरा नाम है । झूठ बोलना और ठगना , इन्हें ही विज्ञापन और प्रतियोगिता का नाम देकर व्यापार के क्षेत्र और वाणिज्य के क्षेत्र मान्य ठहराया गया है । जैसा एक प्रसिद्ध लेखक का कहना है व्यापार के तरीके इतने अधिक स्वार्थपूर्ण हैं कि उन्हें चोरी के अन्तर्गत गिना जा सकता है और इतने सूक्ष्म हैं कि उन्हें ठगी के अन्तर्गत गिनना हमारे व्यापार का जो सामान्य रूप वह स्वार्थपरता हो सकता है । इससे कुछ का ही दूसरा नाम है , यह मानव प्रकृति की ऊंची मान्यताओं से प्रेरित नहीं है , परस्पर का जैसे को तैसा सम्बन्ध भी इसे संचालित नहीं करता ।

यद्यपि बहुत से लोग इस व्यवस्था को अंगीकार ऐसे मध्यमतवाद के कोहरे में आसानी से प्रविष्ट हो जाते है और सारे प्रमाण बाद को अविश्वसनीय मानकर किसी दूसरी दृष्टि की तलाश में अन्यत्र भरने, अपनी इच्छाओं और आशाओं के शिकार हो जाते है और ऐसे मतों को अपना लेते हैं । यह बौद्ध धर्म की ही शान है कि यह बौद्धिक ज्ञान की अनिवार्य

शर्तें ठहराता है । बौद्ध प्रमाणित धर्म में सदाचार और बौद्धिक विकास परस्पर एक दूसरे से पृथक नहीं किये जा सकते ।

सदाचार उच्च जीवन का आधार है तो मानसिक ज्ञान उसे पूर्णता को पहुंचा देता है । कोई कितना भी सदाचारी हो , प्रतीत्य समुत्पादयदि उस को प्रत्ययों से उत्पत्ति को नहीं समझा है तो उसे बोधि प्राप्त नहीं हो सकती । जब वे अधिकार – वाणी के बन्धनों से मुक्त हुए रहते हैं , जो सही प्रतीत होते हैं , रुचिकर लगते हैं और ऊपर उठाने वाले प्रतीत होते हैं । इच्छाओं और अपने मुकाबलों का विश्लेषण करने लगता है और उस मत के दर चित्त की ऐसी स्थिति में कोई प्रगति नहीं हो सकती ।

जब आदमी दूषित मन से कुछ भी बोलता है या कोई भी कार्य करता है , दुःख उस आदमी के पीछे पीछे हो लेता है । सभी चौतसिक धर्मो का पूर्व – गामी मन है , मन ही श्रेष्ठ है , सभी कुछ मनोमय है । जब आदमी स्वच्छ मन से कुछ भी बोलता है या कोई भी कार्य करता है तो सुख उस आदमी का ऐसे पीछा करने लगता है जैसे कभी भी आदमी का साथ न छोड़ने वाली छाया उस के पीछे पीछे चलती है ।

इस लिये बुरे विचारों के विरुद्ध मन का संरक्षण करना चाहिये । आदमी के विचार हमेशा सम्यक् रहने चाहिये । उसे यह जानना चाहिये कि किन किन बातों से परहेज करना और किन किन बातों को करना । उसे इस बात का ध्यान रहना चाहिये कि उस का मन और शरीर किस किस प्रकार का व्यवहार करते हैं । केवल वही आदमी जो विचार कर सकता है वही अपने अपराध को अपराध करके जान सकता है और भविष्य के लिये अपने आचरण को सुधार सकता है ।

इस तरह के विषैले आवेश जैसे क्रोध , प्रेम का अन्धापन , ईर्ष्या इत्यादि धीरे धीरे उस की चेतना में से लुप्त हो जाते हैं , क्योंकि सभी इन्द्रियों की चौकसी की जाती है इसीलिये ध्यान – भावना मार के आक्रमण से संरक्षण प्रदान करती है ।

जो आदमी विचार शून्य है वह उस पंगू आदमी की तरह है , जो किसी काम का नहीं । सम्यक विचार के अनुसार आदमी तभी काम कर सकता है जब उसके पास दिव्य – चक्षु और प्रज्ञा भी हो । अपने विशुद्धि मार्ग में बुद्धघोष आचार्य ने कहा है कि प्रज्ञा मिन मिश्न प्रकार की और नानाविध होती है और यदि इस के सम्बन्ध में विस्तार पूर्वक कुछ लिखा जाय तो लिखने के उद्देश्य के कार्य की पूर्ति न होगी और मामला

यह मान लेना कि समान परिस्थिति में आदमी का व्यवहार भी पूर्व – व्यवहार के समान ही होता है , यह भावना ही है कि आदमी की परिस्थिति उसके चुनाव का निश्चय करती है या उस की परिस्थिति और उस के चुनाव का भी निर्णय किन्हीं खास दूसरी बातों पर निर्भर करता है । यदि आदमी की चेतना अपने में एक स्वतन्त्र सत्ता होती तो शिक्षण द्वारा किसी भी आदमी के चरित्र को प्रमाणित कर सकना सम्भव न होता ।

यह ज्ञान बोधिसत्व के चित्त में अनन्त करुणा को जाग्रत करेगा और वह अथक उत्साह के साथ उन्हें दुःख से मुक्त कराने के कार्य में लग जायेंगे ।

किसी को हम यथार्थ सदाचारी भी नहीं कह सकते यदि उसे अन्तर्दृष्टि और ज्ञान हासिल नहीं है । इस क्षेत्र में बौद्ध के धर्म सभी दूसरे मजहबों से विशिष्ट है ।

जितने भी एकेश्वरवादी धर्म हैं , वे कुछ स्थापनाओं को लेकर चलते हैं और जब आधुनिक युग का विज्ञान इन स्थापनाओं का खण्डन करता है तो यह रोने लगते हैं , " जो आदमी जितना ज्ञान बढ़ाता है , वह उतनी ही मात्रा में दुःख में वृद्धि करता है । यह मन ही है जो स्वयं अपनी निवास – भूमि की रचना करता है । जो मन अकुशल चिन्तन करता है , वही स्वयं विपत्तियों को निमंत्रण देता है । यह मन ही है जो स्वयं अपने दुःखों का जनक है । व माता – पिता ही आदमी का उतना उपचार कर सकते हैं , जितना उसका उपकार सही रास्ते पर चलने वाला उम्र का अपना चित्त कर सकता है । तब सुख अनिवार्य तौर पर साथ देता है ।

जो आदमी अपनी छहों इन्द्रियों को संभालता है और अपने विचारों को काबू में रखता है , वह निश्चय से पापी – मार के युद्ध में विजयी होगा और अपने आप को हर प्रकार के दुख से मुक्त कर लेगा । लेकिन बौद्ध धर्म किन्हीं मनगढ़न्त स्थापनाओं को लेकर नहीं चलता है । यह यथार्थ बातों की पक्की चट्टान पर स्थिर है और इसी लिये इसे ज्ञान के शुष्क प्रकाश से आँख चुराने की जरूरत नहीं " ।

कुछ लोगों ने अद्वैत वेदान्त को उसी पर स्थापित करने की है जिस पर बौद्ध के धर्म स्थिर है । उन का कहना है कि अद्वैत धर्म मुक्ति का मार्ग में ज्ञान ही है । लेकिन बौद्ध धर्म प्रज्ञा शब्द से जो कुछ ग्रहण करता है , वह अद्वैत वेदान्त के ज्ञान से सर्वथा भिन्न है । उसे कुछ भी हो जाय वह शान्त और समान रहता है और उस की वह शान्ति जो आसक्ति

रहित है । वस्तु केवल इसी प्रकार के प्रयासों द्वारा यह संभव है कि आदमी केवल बाह्य परिस्थिति का गुलाम न रहकर कुशल – कर्मों के अनुकूल निर्णय करने का मार्ग प्राप्त कर सके ।

इसी प्रकार वह अपनी अकुशल – प्रवृत्तियों और दूसरी बाधाओं का अन्त करने में सफल होगा । वह आपसी पार्थक्य और विभेद के सभी विचारों से मुक्ति पा सकेगा । अभी भी उसे विशेष बाधाओं पर विजय प्राप्त करना शेष है । उसे इस लोक की या परलोक की सभी भौतिक अभौतिक वासनाओं के प्रति तमाम आकर्षण समाप्त करना शेष है । उसे मान , उद्धृतपन और अविद्या शेष तीनों संयोजनों पर विजय प्राप्त करनी है ।

वह विश्वव्यापी करुणा के विचारों से अपने मन को भर सकेगा । वह मैत्री और उदाराशयता से युक्त होकर बोधि के स्वरूप में श्रेष्ठतम स्वतन्त्रता को प्राप्त कर सकेगा ।

प्रज्ञा का अर्थ है देखना , अनुभव करना और उस पर तर्क करना और इसे अन्तर्चेतना या उच्चतर चित्त – वृत्ति से कुछ लेना – देना नहीं है । दूसरी ओर जो ब्रह्म – वाद में आस्था रखने वाला है वह कारण आदि सभी की परिभाषा करता है । अन्तिम विश्लेषण करने पर उस आदमी का मन जिस ने बोधि प्राप्त कर ली है , अर्थात् बोधि चित्त दो विशिष्ट गुणों को अंगीकार कर लेता है । उन दोनों गुणों का लक्ष्य एक ही है , लेकिन दोनों गुणों का धनी होने से बोधि सत्व पर दोहरा कर्तव्य लद जाता है ।

धर्म – ग्रन्थों के आधार पर और उसे इसकी मंजूरी नहीं है कि वह अपनी मान्यता को तर्क की कसौटी पर कसे जाने की तैयारी करे ।

इसी सच्ची स्वतन्त्रता के वायुमण्डल में वह बिना थकावट का नाम लिये , सभी प्राणियों के हित के लिये अथक परिश्रम करेगा । कर्म चित्त के आधीन हैं और बोधि चित्त के आधीन है । जब कोई भी किसी के कार्य से लाभान्वित होने वाला न हो तब भी आदमी की प्रवृत्ति उदारतामय ही रहनी चाहिये । जब डाकू लोग दुर्गामाई के सामने युवाङ्ग ध्वज की बलि चढ़ाने जा रहे थे तो उस समय भी उनके विचार थे , मैं फिर वापिस यहीं जन्म ग्रहण करूं ताकि मैं इन आदमियों को शिक्षित कर सकूं और इन के मत बदल सकूॅ। और कि मैं उन्हें बुरे कर्मों का त्याग कर अच्छे कर्मों को करने में संलग्न रहने की प्रेरणा दे सकूं और इस प्रकार दूर दूर तक धर्म का प्रचार कर विश्व भर के शान्ति स्थापित कर सकूं लोगों में । सभी चौतसिक धर्मों का पूर्वगामी मन है , मन ही श्रेष्ठ है , सभी कुछ मनोमय है ।

यह केवल वेदों के साथ है कि है उस कारण प्रभाव जब अनेक तथा प्रीत लगने के कारण से प्रार्थना शब्द प्रामाणिकता के ही आधारपर कहा जा सकता है कि विश्व की उत्पत्ति ब्रह्म से हुई है । डा . डयूसेन ने अपने वेदान्त व्यवस्था ग्रन्थ में साफ तौर पर माना है कि वेदान्त के जुडे ज्ञान और ईसाईयत के विश्वास में कहीं कोई अन्तर नहीं । यद्यपि ज्ञान और अन्तर्दृष्टि का ऊंचे से ऊंचा मूल्य है , यदि किसी आदमी ने बहुत कुछ जान लिया है , यदि उस का ज्ञान उस के जीवन में उतर कर उसे विनाश के गर्त में जाने से संरक्षण प्रदान नहीं करता , तो उस ज्ञान का प्रयोजन ही क्या है ? किसी सत्य को भली प्रकार समझना और समझ कर उसे गम्भीरतापूर्वक जीवन में उतारना , यही मुक्ति का मार्ग है ।

तो भी इस की सावधानी रखनी चाहिये कि वे लुढ़क कर अस्थिर चित्त वृत्तियों की ओर न मुड़ जायें । इसे ब्राह्मणी योग के साथ नहीं गड़बड़ाना चाहिये । ब्राह्मणी योग – साधना प्रधानरूप से शारीरिक है और सम्मोहन विद्या का परिणाम है । यह अपने ही द्वारा पैदा किये गये आत्म – श्रम का परिणाम है । बौद्ध ध्यान – भावना का भी शारीरिक पक्ष है और उस के साथ स्वास्थ्य सम्बन्धी नियम जुड़े हुए हैं ।

जीवन – मरण का जंजाल कितना ही उलझा हुआ हो , वह उस में से निकल जाने का रास्ता जानता है , धर्म की गहराई तक पहुंच जाने के कारण , वह भगवान बुद्ध के ज्ञान में जीवन व्यतीत करता है । जब हृदय पवित्र हो जाता है और विचार पवित्र हो जाती है ध्यान से भावना करने वाले पर निम्नस्तरीय आवेश आक्रमण नहीं करते हैं , क्योंकि चित्त उच्चस्तरीय विचारों पर एकाग्र हो जाता है , तो सभी प्रकार के लोभ , आकर्षण दूर दूर रहते हैं , यद्यपि वह अहंकार की शून्यता को अच्छी तरह जानता है , तो भी वह उच्छेदवाद के जाल में नहीं फसता है ।अब जब उसे कोई भी लोभ लालच ललचा नहीं सकता , उसे लगता है कि वह उस बाज के समान है जो अपने पिजरे में से निकल चुका है और जो हवा में स्वतन्त्रतापूर्वक उड़ता है । ।आदमी के कर्म बहुत करके उस के विश्वासों की छाया मात्र होते हैं । सभी मिथ्या धारणाओं से तर्कानुकूल निश्चत तर्क – बाह्य बुद्धि की देन है । उस के मन में किसी भी दूसरे प्राणी के प्रति विरोधी भाव भी नहीं पैदा होता । तब वह अनागामी हो जाता है । अब उसकी संभावना नहीं है कि उसका पतन होगा । लेकिन अभी भी उस से गलतियां हो सकती है ।

इसलिये यह स्वाभाविक है कि आर्य मार्ग अष्टांगिक पर गमन करने वाले के लिये सम्यक – दृष्टि प्रथम आवश्यक पदार्थ हो । और फिर जितना भी कर्म है उस के मूल में इरादा रहता है और इरादा आश्रित होता है विश्वास पर ।

प्रस्थान का आरम्भ ही गन्तव्य स्थान और उस की दिशा का निश्चय करता है । इसलिये सम्यक् दृष्टि से ही आदमी सम्यक् कर्मी होता है ।

साथ ही ध्यान – भावना एक ऐसा अभ्यास है , जो अन्त में चित्त को एक ऐसी अवस्था तक पहुंचा देता हैं , जब उस का चित्त ऐसा प्रकाशमान हो जाता है जो विश्व को एक सर्वथा नये रूप में देख सकता है , आसक्ति – रहित , राग – रहित तथा इस से यह स्पष्ट है द्वेषरहित ।

यह एक ऐसा सतत प्रयास है , जिसका उद्देश है सभी पदार्थों के साथ चित्त का ताल मेल बैठाना , प्रकृति में हर वस्तु के स्थान को समझना और अपने कार्यक्रमों की सभी वस्तुओं से चूल में चूल बैठा लेना । दान देने और शील के नियमों का पालन चरित्र करने का मतलब है आदमी के दैनिक चर्या में कुशल – कर्मों का करना , जिन से निम्नस्तरीय प्रवृत्तियों का लोप होता चला जाता है और उच्चस्तरीय का विकास । इसलिये ध्यान का उस संज्ञा – हीनता या बेहोशी से कुछ भी सम्बन्ध नहीं है , जो धार्मिक रहस्यवाद से जुड़ी हुई है और जिसके बारे में कहा जाता है कि वह उन प्राकृ तिक बनी शक्तियों की जनक है और उस से दिव्य होने वाली दृष्टि की भी प्राप्ति होती है । संशयालुपन आदमी को पुनर्जीवन प्रदान नहीं कर सकता , यह किसी की हत्या कर सकता है , यह किसी को जीता नहीं सकता । किसी नये आदर्श के दिशा में बढ़ने वाली श्रद्धा ही किसी आदमी को किसी नये जीवन की ओर अग्रसर कर सकती है ।

बौद्ध का धर्म का सिद्धान्त किसी भी यथार्थ विज्ञान की तरह यथार्थ बातों का लेखा – जोखा है । कोई भी आदमी इस बात से इनकार नहीं कर सकता कि समस्त चेतन जीवन दुःख से सना हुआ है । जिस ध्यान का बौद्ध जन अभ्यास करते हैं , वह बेहोश हो जाना नहीं हैं । बल्कि यह तो आदमी के चित्त को ही विकसित करने का कार्यक्रम है । यही परिष्कृत चित्त कहलाता है । हम ऐसे संसार में जी रहे हैं जो बुराइयों और दुःख से भरा सर्वत्र और आशा, बात, अभिमान, यदि दुःख न होता , तो जो जीवन संघर्ष सदा से चला आ रहा है और दिखाई दे रहा है ,संघ का कोई भी सदस्य भगवान बुद्ध का अनुशासन मान सकता है , कभी भी . अपने बारे में यह घोषणा न करे कि उसे ऋद्धि – सिद्धियां प्राप्त हैं और झूठ मूठ की प्रसिद्धि के लिये वह कहता फिरे कि वह परिशुद्धात्मा है , यहाँ तक कि वह ऋद्धि – सिद्धि प्राप्त करने के लिये एकान्तवास करने लगे और बाद में दूसरों को यही असाधारण शक्तियाँ प्राप्त करना सिखाने की बातचीत करे । ताकि उस का यह विश्वास बना रहे कि वह पूर्णता प्राप्त कर सकता है ।

बोधिसत्व का प्रयास होता है कि वह सभी वस्तुओं के शून्य रूप का आभास कर ले । बोधिचित्त और व्यापक करुणा एक दूसरे से पृथक नहीं की जा सकतीं और अनात्मवाद से भी । अब साधक का चित्त उन तत्वों की ओर झुकता है , जो बुद्धत्व का एकदम सार हैं ।

तब उसे अन्तिम तौर पर इस बात का बोध हो जाता है कि वह जो कुछ भी चाहता रहा है और उस के लिये जो भी खटपट करता रहा है , वह सभी कुछ एक बड़ी गलती थी , एक बड़ी भूल थी । कहने को इस के विरुद्ध कुछ भी कहा जाय तो भी जो सर्वाधिक सुखी मानव है उस के जीवन का सर्वाधिक सुख का क्षण वही होता है जब उसे नींद आ जाती है , और जो दुखी मानव हैं उन में जो सर्वाधिक दुःखी मानव होता है उस के जीवन का सर्वाधिक दुःख का क्षण वही होता है जब वह जागृत अवस्था में होता है ।

इसी लिये यह अवस्था अधिमुखी अवस्था कहलाती है । प्रज्ञा इसका क्षेत्र है । यद्यपि बोधिसत्व प्रतीत्य समुत्पाद , नैरात्यय और शून्यता की भूमि पर विचरता है तो भी यह नहीं कहा जा सकता कि वह पूर्ण रूप से वासनाओं की सीमाओं को सांध गया है ।

महान् कवि अश्वघोष ने अपने महायान श्रद्धोत्पाद सूत्र में बोधि की प्राप्ति के लिये साधना करने वाले साधक को विशेष रूप से सावधान किया है कि वह बौद्धों की समाधि और तैथिकों की समाधि को एक न समझ बैठें ।

प्रज्ञा – विरहित ध्यान का कुछ भी अच्छा फल नहीं निकल सकता , लेकिन जब दोनों की जोड़ी साथ साथ चलती है , तो आदमी का चित्त सभी विरोधों के समाप्त हो जाने की अवस्था में सभी अस्थिरताओं से मुक्त हो जाता है । वह सभी अहंकारों के जनक आत्म – मोह से भी मोक्ष लाभ कर लेता है । लेकिन एक बार जब आदमी ने समझ लिया कि कोई स्थायी अहम नहीं है , जो मरने के अनन्तर किसी स्थायी स्वर्ग में निवास कर सकता हो , तो हम भोगवादी की उस भूमिका आज खाओ , पीओ , से बहुत दूर नहीं रहते , जिस के अनुसार वह कहता है , इसलिये यह आवश्यक है मौज उड़ाओ क्यों कि कल तो हमें मर जाना है ।

अहंवाद के विनाश से बोधिसत्व सभी मार्ग दुःखों से मुक्त और उस के रास्ते की सभी रुकावटें हट जाती हैं । वह आत्म संयमी हो जाता है , सहनशील हो जाता है

इन में सब से प्रमुख है सतकाय दृष्टि , अपरिवर्तनशील व्यक्तित्व के होने का व्यामोह । इस व्यामोह के अनेक रूप हैं । कभी कभी शरीर को ही अपने – आप मान लिया जाता है । आदमी चाहे तो ऊपर की पारमिता के पक्ष में निचली

पारमिता की उपेक्षा कर सकता है । लेकिन शील के पक्ष में ऊपर की पारमिता की भी उपेक्षा की जा सकती है , क्योंकि शील ही सभी शुक्ल कर्मों का आधार है । सुहल्लेखा में नागार्जुन ने कहा है , शील उसी तरह सर्वोपरि आधार है , जैसे पृथ्वी सभी चलाचल वस्तुओं की स्वयं भगवान बुद्ध ने कहा , पढ़ाई – लिखाई अधिक न भी हो , आचरण पहली चीज है । उस प्रतिसेन ने इस एक ही गाथा के भाव को इतना हृदयङ्गम कर लिया है कि वह इस के सारे व्यक्तित्व में समा गई है , इस का शरीर , इस की वाणी , इस का मन इस के काबू में है ।

कभी कभी यह भी समझ लिया जाता है कि अपने – आप कोई ऐसा पदार्थ है जो मृत्यु के समय शरीर को छोड़ कर उड़ जाता है , कभी कभी यह अपने आप को व्यक्तित्व के प्रति भावनात्मक अथवा आध्यात्मिक के रूप में प्रस्तुत करता है । यह संभव है कि जड़ से कटा हुआ ताड़ का पेड़ फिर हरा हो जाय , लेकिन यह संभव नहीं है कि वह संघ की सदस्यता प्राप्त कर सके स्वप्न , आनन्द मग्न होना , दृश्य देखना और चेतना – विहीन हो जाना जैसी प्रक्रियायें दूसरे धर्मों में परिशुद्धात्मुख की पहचान हैं , वह शुभ – कर्मों में लगे रहकर विकसित की जानी चाहिये थी , ताकि चित्त पर कोई भी धब्बा न दिखाई दे और वह अहंकार से सर्वथा मुक्त हो जाय । जहाँ अहंकार में विश्वास बना रहेगा वहाँ कोई भी आदमी अपनी अपेक्षा अपने पड़ोसी को कभी तरजीह नहीं दे सकता । लेकिन बौद्ध के लिये ये सब बेकार की मूर्खतापूर्ण कल्पनायें हैं साधना बौद्ध ध्यान – भावना को अनुत्तर योग भी कहा गया है ।

कुछ भी हो जो कोई अपने आप को एक स्थायी अपरिवर्तनशील अस्तित्व मानता है जिस का वर्तमान रूप भूतकालिक कारणों पर निर्भर करता है और जिस का भविष्यकालीन रूप वर्तमान कालीन कारण के निर्भर करेगा , उस की उन्नति या ज्ञान प्राप्ति असम्भव है ।

बहुत हालतों में तो संशयालुपन अज्ञान को ढंके रखने का एक आवरण मात्र है । संशय वाद या संशयालुपन यह चित्त की कोई ऐसी प्रवृत्ति नहीं है , बल्कि यह मानसिक अस्थिरता की सूचना देनेवाली एक चौतसिक खराबी है । तैथिकों द्वारा जितने भी समाधि प्राप्ति के लिये किये जाने वाले अभ्यास हैं वे अनिवार्य तौर पर आत्मवादी – संज्ञा के परिणाम हैं , आत्म – संभ्रम के और आत्म सूचनाओं के । बोधिचर्यावतार का कहना पारमिताओं में दान से बढ़कर है शील पारमिता , शील पारमिता से बढ़कर है शान्ति पारमिता , शान्ति पारमिता से बढ़कर है वीर्य पारमिता , बीर्य पारमिता से बढकर प्रज्ञा पारमिता तथा प्रज्ञा पारमिता से बढ़कर है ध्यान पारमिता । और हम यह भी कह सकते हैं कि जिन ध्यानों को दिव्य – ध्यान कहा गया है और जिन में सुध – बुध एकदम खो जाती है , वे कम से कम कुछ लैंगिक अचन प्रक्रिया के परिणाम हैं ।

उस जीवन संघर्ष की कहीं आवश्यकता न होती । जैसी ही स्थिति में हैं उन पशुओं की बात को रहने भी दें तो भी भूख ही अधिकांश मानवों के संगी साथी हैं ।

यह देखने के लिये कि यह आर्य अष्टांगिक मार्ग हमें कहाँ ले जायगा , हमें चलना आरम्भ करना चाहिये । इस में कोई शक नहीं कि मार्ग के पक्ष में तर्क दिये जा सकते हैं , लेकिन आदमी को चाहिये कि वह अपने आप को मार्ग के प्रति समर्पित कर दे और जो ज्ञान इस पथ पर चलने से ही प्राप्त किया जा

प्रमाद का उसे कहीं , लव – लेश भी न होगा । धर्म संगीति में कहा है कि सभी प्राणियों का हित चिन्तन छोड़कर दूसरा कार्य नहीं । सही अभ्यास के द्वारा चेतना शिक्षित और संयत दोनों हो जाती हैं । लेकिन कोई निरपेक्ष वेदना , चेतना या चेतना हो सकती है सम्यक स्मृति सम्यक् व्यायाम का सहयोग आवश्यक है । इसलिये चित्त का सही दिशा में मार्गदर्शन होना चाहिये ।

वह निर्वाण के आनंद करता है । जिसने दिव्य – प्रकाश प्राप्त कर लिया है , अब वह दुनिया की ओर घृणा की दृष्टि से नहीं देखता हैं । यही पहली अवस्था है – प्रमुदिता । नवदीक्षित की प्रसन्नता की यह द्योतक है । यह दान का क्षेत्र है , जहाँ सभी की सरलता से पहुंच है । प्रथम अवस्था में जो अन्तर्दृष्टि प्राप्त हुई है ।

अब वह यही सोचता है कि यह सुख की भूमि है , जहाँ बोधि के प्रकाश ने अपना घर बना रखा है । जो साधक उस बुद्धके तत्व प्राप्ति के लिये प्रयत्नशील है

यह मन ही है जो मय का और नाना प्रकार के दुःखो का संगम है , जो कुशलाकृशल कर्मों को उत्पन्न करता है । जैसा कि तथागत ने कहा है कि दीर्घकाल तक की गई तपस्या निष्प्रयोजन सिद्ध होगी , यदि मन का सही मार्गदर्शन नहीं हुआ है

यदि किसी ने विशुद्धि मार्ग पर अग्रसर होने वाले पथिक के लिये जिन शर्तों की पूर्ति आवश्यक है उन का विचार किया हो , तो वह इस मत से सहमत होगा कि इस आरोप से बढ़कर निराधार आरोप कोई दूसरा हो नहीं सकता ।

अपने अज्ञात और अज्ञेय तोता रटन्त के साथ संशयवाद अस्तित्व की किसी भी सम्भावना के हल कर सकने की संभावना से इनकार करता है और इस प्रकार वह एक ऐसे मानसिक और नैतिक रोग का रूप ग्रहण कर लेता है जो प्रगति की ओर उठाये जा सकने वाले हर कदम को जड़ बना देता है ।

जब किसी ने इरादे और आकांक्षायें बोधिचित्त की उत्पत्ति से परिशुद्ध हो गई हों और वे करुणा और दान के रूप में प्रकट हो रही हों तो उसे आनन्दित होना ही होगा ।

दान , शील भी ध्यान का एक अंग ही मान लिया जाय तो भी ध्यान प्रधान रूप से आदमी के चरित्र को प्रमाणित करने वाली चौतसिक प्रक्रिया है । जिसका साकार रूप मार्ग आर्य अष्टांगिक है उन के लिये कुछ प्रमुख बौद्ध चिन्तकों ने आर्य अष्टांगिक को दस भूमियों में विस्तार रूप से वर्णित किया है ।

साधक की प्रवृत्ति को परिशुद्ध करती है , और साधक की करुणामय प्रवृत्ति को उदार बनाती है । यह दूसरी स्थिति है विमला , विशेष रूप से मल रहित । सदाचार के अभ्यास के साथ चिन्तन भी जुड़ा रहना चाहिये ।

इसके लिये बोधिसत्व वह अपने को कई प्रकार की भावनाओं में लगाये रखे , जिन से तृष्णा का , क्रोध का , घृणा का और गलतियों का क्षय हो जाय और श्रद्धा , करुणा , शुभेच्छा , उदारता और उपेक्षा को लेकर उस मार्ग की स्थिति सुदृढ़ हो जाय । इस का कहना है कि तुम ने जो भी इच्छा की उस का यही अवसान होने वाला था । मैं से हर कोई अपने अपने जीवन से जो शिक्षा ग्रहण करता है वह यही है । कि उसकी इच्छा की वस्तुएं उसे लगातार धोखा देती रहती हैं , कम्पायमान पर गिर पड़ती हैं । वे उतनी आनन्ददायक सिद्ध नहीं होती , होती हैं और भूमि जितनी पीड़ा दायक । आखिर अन्त में वह तमाम पृथ्वी जिन पर वे खड़ी होती हैं वे ही पैरों के नीचे से निकल जाती हैं जीवन का विनाश हो जाता है ।

यह तीसरी स्थिति है , प्रभाकरी , चमकने वाली इस में बुद्धत्व की खोज में लगा हुआ साधक सहनशीलता और सब्र से लगातार लगा रहता है ।

मेरे विचार का पूरी तरह से त्याग करने के लिये , बोधित्व के सत्व को चाहिये कि वह मानसिक तथा नैतिक सुकमों के द्वारा अपने आप को परिपक्व और अपने आप को बोधिपक्षीय धर्मों से सम्बन्धित कार्यक्रमों में व्यस्त चौथी अचिश्मती अत्यन्त प्रभापूर्ण अवस्था है । इस प्रकार वह व्यक्तिगत अहंकार को लोप कर देने के उद्देश से की जाने वाली प्रक्रिया है । इसका उद्देश्य है कि सभी वस्तुओं का आसक्ति – रहित निरीक्षण किया जा सके ।

कोई आदमी जब वह विशेष रूप से उल्लासित हो ऐसा कर सकता है , किन्तु स्थायी रूप से नहीं । शून्यता की स्वीकृति और विश्व की जिस व्याख्या की ओर यह हमें ले जाती हैयह वीर का कार्यक्षेत्र है । उसी के होने से ही सुकमा का होना सम्भव होता है ।

अब बुरे विचारों की ओर से निश्चित होकर बोधिसत्व अपने आपको अध्ययन ओर ध्यान – मनन लगाते है ताकि वे चारों आर्य सत्यों को पूरी गम्भीरता के साथ हृदयङ्गम कर सकें । यह पांचवीं या सुदुर्जया स्थिति है , जिस में ध्यान और समाधि की ही प्रमुखता रहती है । इसलिये जो बोधि – प्राप्ति का इच्छुक है उसे मानसिक स्थिरता प्राप्त करने के लिये भावना भी करना चाहिये । केवल समाधी ही बेकार के चिन्तन – मनन को शान्त रख सकती है । जैसा बौद्ध धर्म में समझा गया है यौवन जीवन की घटनाओं पर ऊंचे से ऊंचे दृष्टिकोण से चिन्तन मनन है । जब वह इन सभी बंधनों से मुक्त हो जाता है और आये अष्टांगिक की राह पर मुक्त होकर विचार कर सकता है , तब उस के सामने सभी चीजें अपने अपने यथार्थ सम्बधों को लिये उपस्थित होती हैं । उस के मन में कोई बुरी बातों की इच्छा पैदा नहीं होती । अच्छी ही अच्छी इच्छायें पैदा होती हैं । चलने पर वह आदर्श तक पहुंच जाता है । वह सम्पूर्ण – योग्य बन जाता है , एक अरहत ।

दान , शील , सहनशीलता प्रभृति गुणों का अभ्यास आदमी को योग्यता प्रदान करता है , प्रतीत्य समुत्पाद से को गम्भीरतापूर्वक हृदयङ्घम करने की और सभी चीजों की शून्यता को समझ लेने की ।

जब बोधिसत्व ने अपने आप को प्रत्येक विशेष वस्तु की बलवती इच्छा से मुक्त कर लिया है और वह वस्तु – विशेष की चिन्ता करता ही नहीं , उस समय वह अचला स्थिति में होता है । यह आठवीं अवस्था है । उस का अपना लक्षण है कि इस में उस गुण की प्रमुखता रहती है , जो अनुत्पत्तिक धर्म चक्षु कहलाती है , किसी भी खास उद्देश्य के लिये हुई है ।

बोधिसत्व के जितने भी कर्म होते हैं , भले ही वे शारीरिक हों , वाणी के हों या मानसिक हो सभी करुणा समन्वित होते हैं और लोगों को लाभ पहुंचाने वाले होते हैं , लेकिन उन में कहीं भी स्वार्थ का लव – लेश नहीं रहता क्योंकि द्वैत का

विचार , मेरे तेरे का विचार पहले ही लुप्त हो गया रहता है । यद्यपि समस्त स्वार्थमय चिन्तन समाप्त हो गया है , लेकिन बोधिसत्व केवल अपने लिये शान्ति यामिनी मुक्ति से संतुष्ट होने वाले नहीं । उच्चस्तरीय जीवन बिताने के लिये मानसिक प्रकाश अनिवार्य है , लेकिन यदि पहले दान , शील और सहन शीलता का अभ्यास न किया जाय तो इस की किसी को प्राप्ति नहीं हो सकती । पुद्गल नैरात्म्य व्यक्ति का आत्म – तत्व से शून्य होना तथा अनालम्बन आत्म के सम्बन्ध में जो व्यामोह है उसे तब तक नष्ट नहीं कर सकते जब तक दानशीलता का अभ्यास उसे अपने सरोसामान , अपने शरीर और अपने प्राणों के त्याग तक की शिक्षा नहीं देता ।ये दोनों गुण हैं प्रज्ञापारमिता और शील पारमिता ।

वे दूसरों को धर्म शिक्षण के प्रति अत्यन्त उत्साही हो जाते परिपक्व हो जायें । ये नौवीं स्थिति है , साधुमति , कल्याण हैं , ताकि उन के पुण्य स्थिति । अब बोधिसत्व धर्ममय होने के लिये अधिकृत हो गये हैं ।

अध्यात्मशास्त्री की कल्पना के बाहर स्वतन्त्र चिन्तन का कहीं अस्तित्व नहीं । ये भी यह विश्वास नहीं करते कि दूसरे मनुष्यों के कार्य के मूल में प्रत्यय नहीं होते । यदि वे ऐसा मानते , तो उन्हें दूसरे लोगों के कार्यों को प्रभावित करने की किसी भी प्रयत्न नहीं करनी चाहिये , क्योंकि इस से परिणाम होता है । हर कोई यह मानकर कार्य करता है कि एक सीमा के भीतर यह बात माननी ही पड़ेगी कि कुछ निश्चित कारणों का प्रत्ययों का निश्चित वह पेशेनगोई की जा सकती है कि अमुक परिस्थिति में अमुक आदमी अमुक तरह से व्यवहार करेगा ।

आरम्भ में एक पारमिता दूसरी की पूरक ठहरती है , लेकिन अन्त में दोनों एक हो जाती हैं । इन का एकत्व स्थापित होने तक शील और साधना ज्ञान प्राप्ति का एक साध्य है , किन्तु मात्र शील और साधना ही ज्ञान प्राप्ति नहीं है ।

सच्चा परोपकारवाद , सच्ची उदारता और यथार्थ दान शीलता में बुद्धि की सदश्यता और ज्ञान – मूलक समझदारी समाविष्ट रहती है । ज्ञान – सम्भार या बुद्धि की प्राप्ति के लिये यह आवश्यक है कि करुणा , भक्ति और शील का भी पूर्व संचय रहा हो ।

बौद्ध के धर्म के उपरोक्त विवरण में पाते है कि मानव जीवन को शांति, आत्मा को ज्ञान प्राप्ति के लिए महात्मा बुद्ध द्वारा दिये गये प्रवचनों, आदर्शों, व्यवहारों पर चलना श्रेयस्कर होगा। ऐसा नहीं की महात्मा बुद्ध के पहले भारतीय जीवन में दर्शन या ज्ञान का अभाव होगा। वैदिक काल में रचित महापुराणों, उपनिषदों में भी इसके लिए विस्तृत व्यवस्था है। महात्मा बुद्ध ने अपने द्वारा परिवर्तित धर्म में व्यवहारिक पद्धति को अपनाने पर जोड़ दिया ताकि जन सामान्य को अपने मानव जीवन के प्रति नए उद्देश्य प्राप्ति में कठिनाईयों का सामना नहीं करना पड़े। जैन धर्म भी समकालीन धर्म के रूप में प्रचिलित था। उस धर्म में भी कामोवेश इसी सिद्धांत का समावेश किया गया था। किस प्रकार समाज में चेतना फैलाई जाए, वास्तव में ये ई० पूर्व छठी सदी में संभालना कठिन हो सकता है। जब उत्तर वैदिक काल में कर्मकांड की प्रधानता बढ़ गई होगी। मानव के लिए क्या उचित है अथवा क्या अनुचित है यह मार्गदर्शन के योग्य हो सकता है जिसकी पूर्ति महात्मा बुद्ध ने बौद्ध धर्म के ज्ञान एवं उपदेश से प्राप्त किया था।

References (संदर्भ ग्रन्थ सूची)

1) कौटिल्य अर्थशास्त्रः आर. रामशास्त्री मैसूर 1919

2) पणिनीय अष्ठाध्यायीः चौखम्भा बनारस

3) कालिदास ग्रन्थवली : सीताराम चतुर्वेदी अलीगढ़ 1960

4) अंगुत्तरनिकाय : पालि पब्लिकेशन बोर्ड, नालन्दा 1960

5) सुत्तनिपातः भिक्षु धर्मरत्न, सारनाथ, 1951

6) जातक : भिक्षु जे काश्यप, नालन्दा 1958

7) दीर्घनिकाय : राहुल सांकृत्यायन

8) मज्झिमनिकाय : श्रीवस्ती 1991

9) संयुक्तनिकाय : जगदीश कश्यप सारनाथ 1954

10) दिव्यदान : कावेल और नील, कैम्ब्रिज 1886

11) महावस्तु : सेनार, पेरिस 1882

12) आर्यमंजुश्रीकल्प : गणपति शास्त्री, त्रिवेन्द्रम, 1925

13) भद्रबाहु : सत्नादि

14) बृहत्कथाकोष : हरिषेण, ए.एन, उपाध्ये बम्बइ, 1943

15) महावंस : परमानन्द सिंह, वाराणसी 1996

16) ऐश्यंट इण्डिया एज : जे. डब्ल्यू, मैक्क्रिण्डम द्वारा अनुदित

17) डिस्काइबह बाई मेगस्थनीज : डॉ रमेशचन्द्र मजूमदार कलकत्ता

18) क्लासिकल एकाउण्ट्स ऑफ इंण्डिया : आर.सी. मजूमदार कलकत्ता, 1960

19) याज्ञवलक्य स्मृति डॉ उमेष पाण्डेय, चौखम्भा संस्कृत संस्थान वाराणसी विक्रम संवत् 2065

20) गुप्त और हार्डिकर : ऐश्यंट इण्डियन सिल्वर पंचमार्क्ड क्वायन्स ऑफ दि मगध मौर्य कार्षायण सिरीज, अन्जानेरी, 1985

21) गोयल, श्रीराम : प्राचीन भारतीय अभिलेख संग्रह जयपुर 1982

22) पाण्डेय, राजबली : अशोक के अभिलेख संग्रह, वाराणसी यू 2022

23) वाजपेयी अग्रवाल : ऐतिहासिक भारतीय अभिलेख जयपुर 1992

24) मुकर्जी बी.एन. स्टडीज इदन दि अरमाइक इडिक्ट्स ऑफ अशोक, कलकत्ता, 1984

25) उपाध्याय बल्देव : वैदिक साहित्य और संस्कृति

26) उपाध्याय भरत सिंह : बुद्धकालीन भारतीय भूगोल, इलाहाबाद वि.स. 2018

27) गोयल श्रीराम : चन्द्र गुप्त मौर्य मेरठ 1987, कौटिल्य एण्ड मेगस्थनीज मेरठ, 1985

28) चटोपाध्याय एस : अर्ली हिस्ट्री ऑफ नार्थ इण्डिया, कलकत्ता, 1958 बिम्बिसार टू अशोक कलकत्ता, 1977

29) थापर रोमिला : ए हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, 1966

अशोक एण्ड दि डिक्लाइन ऑफ मैर्याज, ऑक्सफोर्ड 1961 (हिन्दी सं.) दिल्ली, 1977

30) भदन्त आनंद कौसल्यायन : बौद्ध धर्म का सार 1948

31) भदन्त आनंद कौसल्यायन : बद्धु एवं उनके समकालीन भिक्षु

32) मिश्र योगेन्द्र : मैगस्थनजी का भारत विवरण, पटना, 1951

33) मिश्र योगेन्द्र : हिस्ट्री ऑफ वैशाली

34) मिश्र सुदामा : प्राचीन भारत में जनपद राज्य, वाराणसी, 1972

35) विद्या अलंकार सत्यकेतु : मौर्य साम्राज्य का इतिहास, मसूरी, 1971

36) अग्रवाल कन्हैयालाल : प्राचीन भारत का राजनीतिक इतिहास, मसूरी, 1971

(37) मनुस्मृति : शास्त्री हरगोविन्द, चौ. सं. भ. वाराणसी वि.सं. 2069

(38) महाभारत : दुबे जगतनारायण, संजय प्रकाशन दिल्ली 1999

(39) श्रीमद्भगवद्गीता : गीताप्रेस, गोरखपुर, वि.सं. 2072

(40) श्रीमद्वाल्मीकि–रामायण : चतुर्वेदी द्वारका प्रसाद शर्मा, रामनारायणलाल पब्लिशर और बुकसेलर इलाहाबाद 1927 सं. 2000

(41) अम्बेडकर भीमराव : 'शूद्रों की खोज', गौतम बुक सेन्टर दिल्ली 2006

(42) बंदिष्टे डी. डी. : 'बुद्धिवाद', म. प्र. हि. ग्र अ. भोपाल, 2010

(43) चंचरीक के. एल. : 'विश्व की प्राचीन सभ्यताऐं', युनिवर्सिटी पब्लिकेशन दिल्ली 2011

(44) घोष इला : 'कान्ट्रिब्यूशन ऑफ वुमन टू वैदिक कल्चर' इस्टर्न बुक लिंकर्स दिल्ली 2013

(45) इन्साइक्लोपिड़ियाँ ब्रिटेनिका : 'भारतीय इतिहास' नई दुनिया न्यूज एंड नेटवर्क के सम्पादकों की प्रस्तुति प्रा. लि. इन्दौर, 2003

(46) जैन कैलाशचन्द्र : (अ) 'प्राचीन भारतीय सामाजिक एवं आर्थिक संस्थाएँ', म .प्र. हि. ग्र. अ. भोपाल 2012

(47) 'प्राचीन भारत का सामा. इति.', यूनिवर्सिटी दिल्ली 2011

(48) काणे पाण्डुरंग वामन : 'धर्म शास्त्र का इति.' अनु. अर्जुन चौबे कश्यप, हि. सं. लखनऊ जनवरी 1973

(49) मिश्र उर्मिला प्रकाश : 'प्राचीन भारत में नारी', म .प्र. हि. ग्र. अ. भोपाल 2012

(50) नन्दकुमार : 'प्राचीन भारत का सामा. इति.', अमन बुक सेन्टर दिल्ली 2012

(51) पचौरी उमाशंकर : 'इतिहास' म. प्र. हि. ग्र. अ. भोपाल 2013

(52) शुक्ल रामचन्द्र : 'मैगस्थिनीज का भारतवर्षीय वर्णन', म. प्र. हि ग्र अ. भोपाल 2004

(53) भण्डारकर : 'अषोक'

(54) वैदिक जैन और आधुनिक जीवन पुष्पराज दिल्ली प्रथम संस्करण 1996

(55) प्राचीन भारतीय मूर्ति कला एवं चित्र कला अरविन्द कुमार, मध्य प्रदेष हिन्दी ग्रन्थ अकादमी भोपाल तृतीय संस्करण 2007

(56) भगवान बुद्व आर एस रमन, निधि बुक सेन्टर दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2012

(57) इन्वीलर मार्टीमर, पृथ्वी से पुरातत्व, दिल्ली विष्वविद्यालय, 1968

(58) अजंता गुहा सं 26

(59) अषोक कालीन धार्मिक अभिलेख, गौरीषंकर ओझा एवं ष्याम सुन्दर दास विजय कुमार माधुर भारतीय कला प्रकाषक दिल्ली 2002